लघु पाराशरी

व्याख्याकार :

डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र:

ज्योतिषाचार्य, एम.ए.पी-एच.डी.

फलादेश के मूलभूत व अकाट्य सिद्धान्त

अनूठी व्याख्या-उदाहरण कुण्डलियों सहित

लघु पाराशरी

(विद्याधरी हिन्दी व्याख्या सहित)

व्याख्याकार :

डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्रः

ज्योतिषाचार्य, एम.ए.पी-एच.डी.

(आयुर्निर्णयः, हस्तसंजीवन, भावमंजरी, जैमिनिसूत्रम् सम्पूर्ण)
अष्टकवर्ग महानिबन्धः, फलितविकास, जातकभूषण, जातकालंकार,
जातक तत्व, आदि ग्रन्थों के व्याख्याकार)

रंजन पब्लिकेशन्स

16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002

प्रकाशक :
रंजन पब्लिकेशन्स
16, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
फोन : 23278835, 23282998

© सर्वाधिकार : सुरक्षित

संस्करण : 2014

मूल्य : 80/- रुपये

मुद्रक : संस्कृति प्रेस, दरियागंज, दिल्ली-110002

दो शब्द

लघु पाराशरी हमारी उस प्राचीन प्रतिपादन शैली का एक उत्कृष्ट व अनूठा नमूना है जिसके दर्शन हमें संस्कृत के सूत्रकारिका संग्रह आदि पद्धति से रचित ग्रन्थों में होते हैं।

जिस प्रकार पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश पाने के लिए लघु सिद्धान्त कौमुदी के महत्त्व को सभी जानते हैं, उसी प्रकार फलित ज्योतिष के गहरे अध्ययन की ओर अग्रसर जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक मुख्य प्रवेश द्वार है।

यही कारण है कि सुदीर्घ काल से यह फलित ज्योतिष के पठन-पाठन में अपना अक्षुण्ण स्थान बनाए हुए है। सुकुमारमति छात्रों से लेकर बड़े-बड़े विद्वानों तक के मन को हर लेने वाली इस लघु पाराशरी को जहां अक्षय यश मिला, वहीं पर इसके रचयिता के विषय में निश्चय से कुछ कह पाना सम्भव नहीं है।

विराट को अणु परमाणु में समेटने व उसे अन्तश्चेतना में प्रत्यक्ष करने की शक्ति से प्राचीन भारतीय मनीषियों ने भगवद्गीता, दुर्गासप्तशती, भागवत जैसे बृहद् ग्रन्थों को जिस प्रकार से सात-सात या चार श्लोकों में समेटा है उसी प्रकार पाराशर सिद्धान्तों को यहाँ केवल 42 श्लोकों में समेट दिया गया है। संक्षिप्तीकरण का यह एक श्रेष्ठतम नमूना है।

सम्पूर्ण पाराशर मत का इन 42 श्लोकों में जो नवनीत प्रस्तुत किया गया है वह वास्तव में ज्योतिष में प्रवेश चाहने वाले पाठकों के लिए हृष्टि-पुष्टि व तुष्टि प्रदान करने वाला है।

इस लघुकाय पुस्तक की प्रस्तुत विद्याधरी व्याख्या महर्षि पराशर के सिद्धान्त-रूपी समुद्र के पार जाने में नौका के समान सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस व्याख्या को सम्पन्न करने में मुझे दैवज्ञ वाचस्पति पं. विनायक शास्त्री 'वेताल' की संस्कृत टीका से यथावसर सहायता मिली है। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता हृदय से स्वीकार करता हूँ।

विद्याधरी टीका से संवलित इस **लघु पाराशरी** को अपने पाठकों के हाथों में देते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। इससे पाठकों, विशेषतया नूतन जिज्ञासुओं का उपकार हो सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। नीर-क्षीर विवेक सम्पन्न विद्वानों से इसके गुण व दोष छिपे न रह सकेंगे, अतः विद्वानों के वचनों का मैं अन्तस्तल से स्वागत करूंगा। अन्त में

सत्पाराशरसिद्धान्तसारसंग्रहकारिका।
इयं वेडायतां नूनं बोधे विद्याधरी सदा॥

विनयावनतः
सुरेशचन्द्र मिश्रः

विषय सूची

1. **संज्ञाध्यायः** 9

मंगलाचरण, अनुबन्ध चतुष्टय, विंशोत्तरी की महत्ता, दशासाधन, दशा का भुक्त-भोग्य निकालना, ग्रहों की दृष्टि।

2. **फलनिर्णयाध्यायः** 21

त्रिकोणेशों की शुभता, केन्द्र व त्रिषडायेशों के स्वामियों की व्यवस्था, द्वितीयेश व द्वादशेश का शुभाशुभत्व, परसाहचर्य व स्थानान्तरानुगुण्य का सिद्धान्त, अष्टमेश सम्बन्धी विशेष नियम, केन्द्राधिपत्य दोष के नियम, शुभ ग्रहों में उत्तरोत्तर अधिक केन्द्रेश दोष, मारकत्व निर्णय, गुरु व शुक्र का मारकत्व, बुधादि ग्रहों की व्यवस्था, सूर्य व चन्द्र का विशेष नियम, ग्रहों का योगकारकत्व, राहु केतु का शुभाशुभ निर्णय, मारक व कारक राहु केतु उदाहरण।

3. **योगफलाध्यायः** 50

ग्रहों के शुभफलदायक योग, केन्द्र-त्रिकोण सम्बन्ध, ग्रहों का चार प्रकार का सम्बन्ध, अन्य प्रकार से योगकारक ग्रह का निर्णय, शुभाशुभ भावों के एक स्वामी का फल तारतम्य, दोषयुक्त केन्द्र-त्रिकोणेश भी योगकारक, केन्द्रेश के दोष, त्रिकोणेश के दोष, योगकारकता का स्पष्टीकरण, सर्वोत्तम राजयोग, उदाहरणों से तथ्यों की पुष्टि, दशा व उसके फल का नियम, दो बली अन्तर्दशाओं के बीच सम्बन्ध होने पर भी निष्फलता का उदाहरण, योगकारक ग्रहों की निर्बल दशा भी योगदायक, अन्य श्रेष्ठ योग, राहु केतु का योगकारकत्व, राजयोग भंग।

4. मारकाध्यायः 88

मारक स्थान का निर्णय, मुख्य मारक स्थान, मारक ग्रह का विवेक, मारक ग्रह विचार की पद्धति, आयु वृद्धि के उपकरण, आयु क्षीण करने वाले योग, जैमिनीय मत से संक्षिप्त आयु विचार, उदाहरण द्वारा पुष्टि, अन्य मारक ग्रह, मारकेश की मारक स्थान स्थिति, पापत्वयुक्त मारक ग्रह की खोज, द्वादशेश भी मारक, उक्त ग्रहों के साथी ग्रह भी मारक, तीनों व्ययेशों के सम्बन्धी भी मारक, अष्टमेश का मारकत्व, शुभ ग्रहों का भी मारकत्व निश्चय, केवल पापी ग्रह मारक, शनि की विशेष मारकता, वास्तविक उदाहरण।

5. दशाफलाध्यायः 110

दशा फल का निर्णय, अन्तर्दशाओं का फल निर्णय, सम ग्रह की अन्तर्दशा का फल, केन्द्रेश व त्रिकोणेश की दशा का फल, योगकारक व मारक दशान्तर्दशाओं का समन्वय, वास्तविक उदाहरण, शुभ दशा में कारक की अन्तर्दशा, राहु केतु की दशान्तर्दशा का फल, पाप ग्रहों की दशाओं का फल निर्णय, मारक दशा का विशेष फल नियम, वास्तविक उदाहरण, शनि व शुक्र की दशान्तर्दशा का विशेष नियम, वास्तविक उदाहरणों से पुष्टि, विशिष्ट राजयोग, उदाहरण, आत्मकथन।

॥ श्रीर्मामव्यात् ॥

यो व्यासवाक्यमविकलं सर्वं निपीय,
प्रापय्य लेखविषयं जयलेखकाले।
विद्यावतां मतितामभवद्वरेण्यः,
क्षेमं दिशेदविरतं गदतां गणेशः॥ 1॥
य आत्मा सर्वलोकानां चक्षुर्भूतः सनातनः।
तरणिर्मे तरी भूयात्, संशयाप्लवलङ्घने॥ 2॥
तमीशानं महेशानममन्दानन्ददायिनम्।
विश्वरूपं विरूपाक्षं भवं भव्याय संश्रये॥ 3॥
पाराशरप्रथितज्यौतिषशास्त्रतत्त्वा-
न्यादाय यो ग्रथितवानुडुदायदीपम्।
तं कंचनानभिहिताभिजनादिजातं
वन्दे निगूढचरितं कृतिना समेतम्॥ 4॥
उडुदायप्रदीपेऽस्मिँल्लघुपाराशरे मते।
कुर्वे सुरेशमिश्रोऽहं व्याख्यां विद्याधरीमिमाम्॥ 5॥

श्री वैद्यनाथ विरचित

जातक पारिजात

प्रस्तुत ग्रन्थ "*जातक पारिजात*" श्री वैद्यनाथ दीक्षित द्वारा रचित ज्योतिष-साहित्य के नव रत्नों में से एक है। 18 अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्वान रचनाकार ने निर्द्वन्द्व रूप से पाराशरी मत का पूर्ण आदर-सम्मान करते हुए अपने नवीन मत एवं अनुभवों को भी सार्थक रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का पठन "*बृहज्जातक*" एवं *'सारावली'* के मनन करने के पश्चात करना आवश्यक है। *बृहज्जातक* की आवश्यकता को ध्यान में रखकर कल्याण वर्मा ने *सारावली* की रचना की। परंतु *सारावली* में भी कुछ महत्वपूर्ण विषयों के अभाव के कारण ही *जातक पारिजात* की रचना की गई है।

वैद्यनाथ ने मत विवेचन में लकीर का फकीर होने के स्थान पर अनुभव सिद्ध बातों को खुले हृदय से स्वीकार किया है। *फलदीपिका जातकभूषण, जातकतत्व, अष्टकवर्ग महानिबंध* आदि उच्च कोटि के ग्रन्थों में भी स्थान-स्थान पर इस अद्वितीय ग्रन्थ का महत्व प्रस्तुत होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में खरग्रह विवेचन, निर्याण विवेचन, स्त्रीजातक, विद्या व शिक्षा विचार द्वितीय भाव भी मांगलिक विचार का अनूठापन, राजयोग भंग का अद्‌भुत विचार आदि अनेक विषयों का खुलासा बहुत ही आत्मविश्वास के साथ ग्रन्थकार ने किया है। *जातक पारिजात* स्वयं संक्षिप्त लेकिन सारग्राही होते हुए फलित ज्योतिप का उच्च श्रेणी का अनूठा ग्रन्थ है, जो पाठक के हृदय में उठने वाले प्रश्नों का समुचित समाधान करता है।

यह ग्रन्थ प्रारंभिक अध्ययनकर्ताओ एवं शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होगा।

व्याख्याकार : डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य

सम्पूर्ण ग्रन्थ 2 भागों में (अध्याय 18)

विशेष संस्करण 600 रुपये *मूल्य : 400 रुपये*

॥ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ॥

1 संज्ञाध्यायः

मंगलाचरण :

सिद्धान्तमौपनिषदं शुद्धान्तं परमेष्ठिनः।
शोणाधरं महः किञ्चिद् वीणाधरमुपास्महे॥ 1॥

अर्थ–उपनिषदों के सिद्धान्तभूत सरस्वती के उस तेज की उपासना करते हैं, जिसकी स्थिति ब्रह्मा के अन्तःपुर में है। जो तेज लाल अधर वाला व वीणा को धारण करने वाला है।

महर्षि पराशर के सिद्धान्तों का अनुसरण कर, जातक शास्त्र के कुछ मूलभूत व विशिष्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए, अज्ञात विद्वान् **'उडुदायप्रदीप'** अथवा **'लघु पाराशरी'** नामक पुस्तक की निर्विघ्न समाप्ति के उद्देश्य से मंगलाचरण करते हैं।

उपनिषत् शब्द का तात्पर्य सारभूत तत्त्व से होता है। सरस्वती देवी सकल वाङ्मय प्रपंच की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण स्वयं ही वाणी की सारभूत हैं। उसी औपनिषद् सिद्धान्त अर्थात् उपनिषत् रूप वाक्सारभूत सिद्धान्तों का निर्गम व चरमता साक्षात् वाणीरूप सरस्वती देवी में निहित है। उसी सरस्वती देवी के तेज (सारस्वतं महः) की उपासना ग्रन्थकार करते हैं। समस्त संसार के उत्पादक परमेष्ठी अर्थात् ब्रह्मा जी के अन्तःपुर की अधिष्ठात्री भी स्वयं सरस्वती देवी ही हैं। अर्थात् ब्रह्मा स्वयं वेदों के उत्पत्तिस्थान होने के कारण सरस्वती से ही शक्तिमान् हैं। वह सरस्वती

देवी लाल रंग के अधरोष्ठ वाली और वीणा को धारण करने वाली हैं।

इस श्लोक का अर्थ निर्गुण रूप से माना जाता है। उसका प्रतिपादन इस प्रकार से होगा।

हम परब्रह्म की उपासना करते हैं। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श इन पाँच तन्मात्राओं से क्रमशः तेज, जल, पृथ्वी, आकाश व वायु इन पाँच महाभूतों का निर्माण होता है। इनमें से आकाश को शब्द गुण वाला माना जाता है। आकाश अर्थात् शून्य से ही शब्द का प्रत्यक्ष होता है, यह सार्वजनिक तथ्य है। उपनिषदों में भी **'खं ब्रह्म'** के द्वारा आकाश को ब्रह्म माना गया है। अतः आकाशभूत परब्रह्म की हम उपासना करते हैं, ऐसा अर्थ सुगम हो जाता है।

अब विशेषणों को लें। उपनिषदों में भी भारतीय दर्शन के सिद्धान्तों का बीज माना जाता है। **'तत्त्वमसि' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि'** इत्यादि श्रुति वाक्यों का स्रोत उपनिषद ही हैं। वेदों के सारभूत दार्शनिक तत्त्वों का निर्वचन हमें उपनिषदों में ही मिलता है। अतः ब्रह्मप्रतिपादक वाक्यों के प्रतिपादक उपनिषद भी ब्रह्मरूप ही हैं। उन्हीं उपनिषदों का **'सिद्ध'** अर्थात् वास्तविक प्रमाणगम्य अन्त अर्थात् निर्णय भी (औपनिषदं सिद्धान्तं) ब्रह्म ही सिद्ध होता है।

ऐसा वह ब्रह्म तुरीय 'चैतन्य' निर्विकार, निर्लिप्त, शुद्ध, बुद्ध व मुक्त स्वभाव अथवा स्वरूप वाला है। अतः उस परमेष्ठिन् सर्वातिशायी श्रेष्ठ चैतन्य को **शुद्धान्त** अर्थात् शुद्ध स्वरूप वाला बताया गया है। **'अन्त'** शब्द का अर्थ संस्कृत में **'स्वरूप'** भी होता है।

इसी ब्रह्म में समस्त ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। इसी से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है, जैसा कि श्रुतिवचन है :

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।'

संसारोत्पादक धर्म के कारण यह रजोगुण से विशिष्ट माना जाता है। रजोगुण को लाल रंग वाला माना गया है–

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां, बह्वीः प्रजाः सृजमाना सरूपा इत्यादि उपनिषद् वाक्य में लोहित (लाल) शुक्ल (सफेद) व

कृष्ण (काला) शब्दों की क्रमशः रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुण में लक्षणा मानी गई है। अतः शोणाधर शब्द का अर्थ रजोगुण विशिष्ट हो जाता है।

वीणाधर शब्द से भी यही अर्थ लगाया जाता है। वीणा शब्द का अर्थ विद्युत भी होता है। अतः वीणा शब्द से विद्युत्तेज लक्ष्य होता है। वह विद्युत्तेज भी जिस ब्रह्म के सामने अधर अर्थात् नीचा हो जाता है, वह ब्रह्म ही वीणाधर सिद्ध होता है।

अथवा वह ब्रह्म शब्दातीत है। अवाङ्मनस्गोचर है। इस स्थिति में वीणा शब्द का लक्ष्यार्थ शब्द होगा।

ऐसे किसी अनिर्वचनीय, अखण्ड, सत्, चित्, आनन्द रूप तेज की हम उपासना करते हैं।

ग्रन्थ रचना का आधार व उद्देश्य :

वयं पाराशरीं होरामनुसृत्य यथामति।
उडुदायप्रदीपाख्यं कुर्मो दैवविदां मुदे॥ 2 ॥

अर्थ–हम महर्षि पराशरविरचित 'पाराशरहोरा' का अनुसरण करके यथामति, प्रस्तुत '**उडुदायप्रदीप**' नामक ग्रन्थ की रचना दैवज्ञों की प्रसन्नता के लिए करते हैं।

यहाँ पर 'वयं' शब्द का सम्बन्ध पूर्व श्लोक में कथित 'उपास्महे' व इस श्लोक में प्रोक्त 'कुर्मः' शब्द के साथ '**देहलीदीपकन्याय**' से होता है। जिस प्रकार घर की देहली पर रखा दीपक घर के भीतर व बाहर समान रूप से प्रकाश फेंकता है, उसी प्रकार किसी कर्तृपद या क्रियापद का कई स्थानों पर सम्बन्ध होने पर यह न्याय होता है।

इस पुस्तक का नाम ग्रन्थकार को '**उडुदायप्रदीप**' ही अभीष्ट है। उडु नक्षत्र को व दाय दशा को कहते हैं। नक्षत्रों के आधार पर चलने वाली विंशोत्तरी दशा के आधार पर इसमें फल प्रतिपादन के कुछ अकाट्य नियमों की स्थापना की गई है। अतः इसका यह सार्थक नाम है। लेकिन आजकल ही क्या, बहुत प्राचीन काल से ही इसे '**लघु पाराशरी**' के नाम से ही प्रसिद्धि मिली है।

इस पुस्तक का अध्ययन करने से निश्चय ही फलादेश की प्रामाणिकता बढ़ती है व उसकी धार पैनी होती है, यह तथ्य सदियों से सब ने एक स्वर से स्वीकार किया है।

ग्रन्थ रचना के प्रारम्भ में ही प्रतिपाद्य विषय, उसका सम्बन्ध एवं रचना का उद्देश्य ग्रन्थकार को स्पष्ट कर देना चाहिए। इसी दृष्टि से ग्रन्थकार ने इस श्लोक में ये तथ्य प्रकट किए हैं।

(1) इसमें पाराशर सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। (विषय)

(2) पाराशर होरा के आधार पर इसकी रचना की गई है। अतः पाराशर सिद्धान्तों व लघु पाराशरी में बोध्यबोधकभाव सम्बन्ध है। (सम्बन्ध)

(3) ग्रन्थ की रचना दैवज्ञों की प्रसन्नता व मार्ग-दर्शन के उद्देश्य से की गई है। (प्रयोजन)

नक्षत्र की प्रमुखता :

फलानि नक्षत्रदशा प्रकारेण विवृण्महे।
दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता॥ 3॥

अर्थ–इस ग्रन्थ में नक्षत्र दशा के आधार पर हम भावी फलाफल का निर्णय करने का प्रकार बताते हैं।

इस ग्रन्थ में सर्वत्र विंशोत्तरी दशा का ही ग्रहण है। अष्टोत्तरी दशा हमें इस संदर्भ में स्वीकार्य नहीं है।

पाराशर होरा में यद्यपि कई प्रकार की दशाओं का निरूपण मिलता है, जिनका प्रारम्भ नक्षत्रानुसार ही होता है। महर्षि पराशर को तो परिस्थित्यनुसार दशा के कई भेदोपभेद स्वीकार्य थे, अन्यथा बृहत्पाराशर में उन दशा प्रकारों को स्थान न मिला होता। तब यह प्रश्न स्वाभाविक ही है कि यहाँ इन दो दशाओं का ही नामोल्लेख क्यों किया गया और उनमें से भी विंशोत्तरी को ही स्वीकार क्यों किया गया? अस्तु, इस विषय में ध्यातव्य है कि महर्षि पराशर ने विंशोत्तरी दशा को अधिक महत्त्व दिया है। विंशोत्तरी सर्वमान्य दशा प्रकार है तथा अनुभव में भी इसे प्रामाणिक माना जाता है। अतः लघु पाराशरी के रचयिता का तो मात्र इतना ही तात्पर्य है

कि पुस्तक में जो सिद्धान्त मैं दशाफल के संदर्भ में बता रहा हूँ, वे विंशोत्तरी दशा प्रकार को दृष्टि में रखकर ही लिखे गए हैं। अतः इन नियमों का प्रयोग विंशोत्तरी प्रकार में ही करना चाहिए, अन्यत्र नहीं।

अस्तु, विंशोत्तरी को इतना महत्त्व क्यों दिया गया, इस विषय में निष्कर्ष रूप में ये बातें कही जा सकती हैं–

(1) विंशोत्तरी दशा का प्रयोग बिना किसी शर्त के होता है, जबकि अष्टोत्तरी, षोडशोत्तरी आदि दशाओं के लिए जन्मकालीन ग्रहादि स्थिति के विशेष नियम हैं। उदाहरणार्थ, अष्टोत्तरी दशा इन परिस्थितियों में ग्राह्य है–

(क) लग्नेश से 4, 5, 7, 9, 10, स्थानों में राहु स्थित हो।

(ख) कृष्ण पक्ष में दिन में व शुक्ल पक्ष में रात्रि में जन्म हो।

(2) मनुष्य की परमायु 120 वर्ष मानी जाती है। यह पूर्ण आयुमान विंशोत्तरी में ही घटित होता है। जबकि अष्टोत्तरी दशा 108 वर्ष, षोडशोत्तरी 116 वर्ष, द्वादशोत्तरी 112 वर्ष इत्यादि प्रकार से मनुष्य की परमायु में अन्त तक व्याप्त नहीं रहती हैं। ध्यान रखिए, योगिनी दशा के कुल वर्ष 36 होते हैं। अतः यावज्जीवन के फलादेश के लिए उसे फलितवेत्ता उपयुक्त नहीं मानते हैं। कुछ योगिनी दशा के पक्षधर 36 वर्षों के बाद पुनः उसकी आवृत्ति मानते हैं, जो व्यवहारतः एक अटपटा नियम है।

(3) उक्त कारणों से ही राजयोग, आयु, ग्रह के फल परिपाक, काल, विपत्ति, विवाह, सन्तानादि जीवनोपयोगी विषयों का विचार विंशोत्तरी से सफलतापूर्वक हो जाता है, जबकि अन्य दशाएं वहाँ पूर्ण सफल नहीं हैं।

(4) विंशोत्तरी दशा को अनेक विज्ञों ने अनुभव में खरा पाया है।

विंशोत्तरी दशा को जानने का क्या प्रकार है, इस विषय में संक्षेप में बताते हैं–

कृत्तिका नक्षत्र से जन्म तक की संख्या में (अभिजित्‌रहित) 9 का भाग दें। शेष संख्या तुल्य दशा वर्तमान होती है।

इस दशा प्रकार में ग्रहों का क्रम (दशेश क्रम) इस प्रकार है–

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक्र।

इस क्रम को याद रखने के लिए ज्योतिर्विदों में यह सूत्र प्रचलित है–

आ, चं, भौ, रां, जी, श, बु, के, शु

दशेशों का यह विशेष क्रम क्यों है? इसके पीछे तर्कपूर्ण एवं विकसित पद्धति है। यह अनुमान नहीं है। नक्षत्रों के अधिष्ठाता ग्रहों के आधार पर यह क्रम माना गया है।

कृत्तिका से पूर्वा फाल्गुनी तक क्रमशः उपर्युक्त क्रम से अधिष्ठाता हैं। बाद में उ. फा. से पू. षा. व उ. षा. से भरणी तक यही क्रम दो बार दोहराया जाता है। इस प्रकार 9 ग्रहों के हिस्से में 3-3 नक्षत्र आते हैं।

इनके दशा वर्ष क्रमशः 6, 10, 7, 18, 16, 19, 17, 7, 20 हैं। ये सब विषय इस चक्र में स्पष्ट हैं–

विंशोत्तरी दशा ज्ञान चक्र

दशेश	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
वर्ष	6	10	7	18	16	19	17	7	20
संक्षिप्त नाम	आ.	चं.	भौ.	रा.	जी.	श.	बु.	के.	शु.
	कृत्तिका उ.फा. उ.षा.	रोहिणी हस्त श्रवण	मृग. चित्रा धनिष्ठा	आर्द्रा स्वाती शतभिषा	पुनर्वसु विशाखा पू.भा.	पुष्य अनु. उ.भा.	श्लेषा ज्येष्ठा रेवती	[illegible] मूल अश्विनी	पू.फा. पू.षा. भरणी

दशा का भुक्त व भोग्य समय जानना :

विंशोत्तरी दशा जन्म नक्षत्र पर आधारित है। जन्म नक्षत्र वास्तव में चन्द्रमा का अधिष्ठित नक्षत्र ही है। इसीलिए जन्मराशि व चन्द्रराशि एक ही होती है। अब दशा स्वामी के जितने वर्ष पहले बताए हैं वे पूरे नक्षत्र के लिए हैं। अतः जन्म समय के बीते नक्षत्र व बाकी नक्षत्र के आधार पर अनुपात से जन्मदशा के भुक्त वर्षादि व भोग्य वर्षादि जाने जा सकते हैं। भुक्त-भोग्य काल जानने के कई प्रकार प्रचलित हैं। उनमें कुछ

उपयोगी व प्रचलित प्रकार यहाँ दिए जा रहे हैं–

1. भयात व भभोग से भोग्य दशा ज्ञान :

जन्म नक्षत्र की जन्म समय तक बीती घड़ियों का नाम **भयात** है। 'भ' अर्थात् नक्षत्र, 'यात' अर्थात् बीता हुआ। इसी प्रकार जन्म नक्षत्र के सम्पूर्ण मान को भभोग कहते हैं। इससे जन्मदशा का भी भुक्त भोग्य जाना जा सकता है। भयात व भभोग को कैसे जानें?

(क) गत नक्षत्र की घड़ी पलों को 60 घड़ी में से घटाएं। शेष को दो स्थानों पर रखें। एक स्थान पर अपना इष्टकाल जोड़ें तो योग भयात होगा व दूसरे स्थान पर वर्तमान नक्षत्र जोड़ने से भभोग होगा।

(ख) स्पष्ट चन्द्रमा की कलाएं बनाकर उनमें 800 से भाग दें, शेष को 60 से गुणा कर पुनः 800 से भाग दें तो लब्धि नक्षत्र का भयात होता है। इसे 60 में से घटाने पर नक्षत्र का शेष भाग होता है।

उदाहरणार्थ–जन्मकालीन स्पष्ट चन्द्र 3 12° 2' 4" है।

3 राशि=90 अंश+12 अंश =102 अंश × 60 = 6120 कला + 2 कला = 6122 कला व 4 विकला ÷ 800 = शेष 522/4।

522×60 = 31320 ÷ 800 = 39 घड़ी 9 पल स्पष्ट भयात।

60 घड़ी – 39.9 = 20.51 घड़ी भोग्य नक्षत्र है। इस पद्धति में भभोग सदैव 60 घड़ी ही रहता है।

पलात्मक भयात को दशेश के वर्षों से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से दशा के भुक्त वर्ष आते हैं।

शेष को 12 से गुणा कर पुनः पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्धि भुक्त मास होंगे।

शेष को पुनः 30 से गुणा कर भभोग से भाग देने पर लब्धि भुक्त दिन होंगे। इस प्रकार दशा के भुक्त वर्ष, मास व दिनों को जानकर उन्हें सम्पूर्ण दशा मान में से घटाने पर शेष भोग्य दशा होती है।

अथवा प्रकार (ख) में प्रोक्त भोग्य नक्षत्र को दशा वर्षों से गुणा कर गुणनफल को 6 से गुणा करें। गुणनफल भोग्य दशा के कुल दिन होंगे।

इन दिनों को 30 से भाग देकर मास व मासों को 12 से भाग देकर वर्ष जान लें। इस प्रकार भोग्य दशा के वर्ष, मास व दिन ज्ञात हो जाएंगे।

इस सारी प्रक्रिया में विवादस्पद विषय यह है कि नक्षत्र का कुल भोग्य अर्थात् सदैव 60 घड़ी स्थिर माना जाए या पंचांगस्थ घटी पलों से पूर्वोक्त प्रकार से प्राप्त भभोग को माना जाए। पंचांगसाधित भभोग कम से कम 53 घड़ी व अधिकाधिक 67 घड़ी के बीच कहीं होता है, अर्थात् वह अस्थिर मान वाला भभोग होता है। फलदीपिका में 60 घड़ी स्थिर मान वाला भभोग ही माना गया है। जबकि प्रचलित दैवज्ञ सम्प्रदाय अस्थिर मान वाला भभोग मानने के पक्ष में है। हमारे विचार से पंचांगस्थ गत नक्षत्र व वर्तमान नक्षत्र की घड़ियों द्वारा साधित भभोग का इस प्रसंग में ग्रहण नहीं करना चाहिए।

चन्द्र स्पष्ट से भुक्त-भोग्य साधन

चन्द्रमा का अधिष्ठित नक्षत्र ही जन्म नक्षत्र होता है। अतः चन्द्रमा के गतांशादिक से अधिक सरलता व सटीकता से दशा का भुक्त-भोग्य जाना जा सकता है।

चन्द्रमा के सवा दो नक्षत्र, एक राशि के बराबर होते हैं। एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं। अतः 9 नक्षत्र चरणों की एक राशि होती है। एक नक्षत्र 13° 20' के बराबर व एक चरण 3° 20' के बराबर होता है। अतः जन्मकालीन चन्द्रमा के अंशादिकों को अनुपात पद्धति से दशा के भोग्य वर्षों में परिणत कर लिया जाता है। इसकी सरल सारणी लाहिडी पंचांग के पीछे दी रहती है। वहाँ से सरलतापूर्वक इस विषय को समझा जा सकता है। यदि सारणी उपलब्ध न हो तो स्पष्ट चन्द्र की राशियों सहित कला बना लें। इस कलीकृत चन्द्र को 800 से भाग दें।

अब लब्धि को छोड़ दें। शेष को 60 से गुणा कर पुनः 800 का भाग दें। लब्धि गत नक्षत्र अर्थात् भयात होगी। इसे 60 घड़ी में से घटा कर भोग्य नक्षत्र जान लें।

इसी भोग्य नक्षत्र के घड़ी पलों को दशा वर्षों से गुणा कर फिर 6 से गुणा करने पर गुणनफल दशा के कुल भोग्य दिन होंगे। इन दिनों के

मास व वर्ष बना लें। इस प्रकार भी उक्त सारणी तुल्य भोग्य दशा आ जाएगी।

हमारे विचार से यह पद्धति अधिक उपयोगी व ग्राह्य है। कम-से-कम दशा साधन में इसे ही प्रयोग करें।

ध्यान रखिए, दशा के ये वर्ष सौरमान से होते हैं। अतः दशा चक्र लिखते समय सदैव सूर्य के गतांशों से अथवा अंग्रेजी तारीख से दशा का प्रारम्भ व अन्त प्रदर्शित करें। सावन मास 30 दिन व सावन वर्ष 360 दिन का यहाँ ग्रहण करना भ्रामक होगा। इस विषय में **फलदीपिका** में पृष्ठ 204 पर स्पष्ट कहा गया है-

रविस्फुटं तज्जनने यदासीत्,
तथाविधश्चेत्प्रतिवर्षमर्कः
आवृत्तयः सन्ति दशाब्दकानां,
भागक्रमात् तद्दिवसाः प्रकल्प्याः॥19/4॥

यही कारण है कि दैवज्ञ लोग दशा चक्र में जन्मकालीन सूर्यस्पष्ट की राशि, अंश, कला, विकला में क्रमशः भोग्य दशा के मास, दिन, घड़ी व पलों को जोड़कर विक्रम संवत् या जन्म शक वर्ष में भोग्य वर्षों को जोड़ते हैं। लेकिन अंग्रेजी मास, तिथि का प्रयोग भी सौरमान पर आधारित है। अतः तदनुसार भी आप निःसंकोच दशारम्भ व समाप्ति प्रदर्शित कर सकते हैं। लेकिन मास जोड़ते समय 30-31 दिनों के मासों का भेद भी रखना पड़ेगा। यह बात व्यवहारतः कठिन है। अतः अच्छा यही होगा कि अंग्रेजी तिथि को देकर (1मास=30 दिन)। साथ में सूर्य स्पष्टानुसार भी अवश्य दशारम्भ व समाप्ति प्रदर्शित करें।

बुधैर्भावादयः सर्वे ज्ञेयाः सामान्यशास्त्रतः।
एतच्छास्त्रानुसारेण संज्ञां ब्रूमो विशेषतः॥ 4॥

अर्थ-पराशरानुयायी विद्वानों को भावादिकों के विषय में सामान्य तथ्यों की जानकारी पाराशरमतानुसारी अन्य ग्रन्थों से कर लेनी चाहिए।

अब यहाँ से इस विषय के विशेष तथ्यों का कथन करते हैं।

कुण्डली के बारह भाव, उनके स्वामी, राशियों की संज्ञा, भावों की विशेष संज्ञाएं, षड्वर्गादि का ज्ञान, जातक शास्त्र के प्रसिद्ध अन्य ग्रन्थों

से कर लेना चाहिए। यहाँ संक्षेप में बताया जा रहा है। विशेष ज्ञातव्य के लिए हमारी **भावमंजरी प्रणवाख्या** का परिभाषा प्रकरण देखें।

तनु, धन, भ्रातृ, मातृ, पुत्र, शत्रु, स्त्री, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय एवं व्यय से क्रमशः 12 भावों की सार्थक संज्ञाएं हैं।

इनमें से 1, 5, 9 त्रिकोण हैं। नवम भाव को त्रित्रिकोण भी कहते हैं। 1, 4, 7, 10 भाव केन्द्र संज्ञक हैं। 4, 8 की चतुरस्र संज्ञा है।

3, 6, 10, 11 उपचय स्थान हैं। शेष 1, 2, 4, 5, 7, 8, 9, 12 भाव अनुपचय स्थान हैं।

6, 8, 12 त्रिक संज्ञक हैं। 2, 7 मारक स्थान हैं व 3, 8 आयु स्थान होते हैं।

2, 5, 8, 11 स्थान पणफ़र एवं 3, 6, 9, 12 स्थान आपोक्लिम होते हैं।

इसी प्रकार ग्रहों के परस्पर चार प्रकार के सम्बन्ध, राशियों का शील व ग्रहों की अवस्थादि भी जान लेनी चाहिएं। इन सब विषयों का विस्तार से विवेचन **भावमंजरी प्रणवाख्या** व **जातकतत्त्वम् अखिलाक्षरा** में कर चुके हैं।

पाराशर मत में ग्रहों की दृष्टि :

पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजाः पुनः।
विशेषतश्च त्रिदशत्रिकोण चतुरष्टमान्॥ 5॥

अर्थ–सभी ग्रह अपने अधिष्ठित स्थान से सातवें स्थान को देखते हैं। किन्तु शनि, गुरु व मंगल क्रमशः तृतीय-दशम, पंचम-नवम एवं चतुर्थ-अष्टम स्थान को विशेषतया देखते हैं।

आशय यह है कि सूर्य, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, राहु, केतु ये सभी ग्रह अपने स्थान से सातवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। जबकि शेष तीन (गुरु, शनि, मंगल) की यह विशेषता है कि ये सप्तम स्थान को तो पूर्ण दृष्टि से देखते ही हैं, साथ ही उक्त स्थानों पर भी पूर्ण दृष्टि रखते हैं।

शनि 3, 7, 10 स्थानों पर, गुरु 5, 7, 9 स्थानों पर व मंगल 4, 7, 8 स्थानों पर पूर्ण दृष्टि रखता है।

'**विशेषतः**' पद के द्वारा यही संकेत दिया गया है कि बाकी ग्रह तो केवल एक ही स्थान पर पूर्ण दृष्टि रखते हैं, जबकि शनि, गुरु, मंगल तीन-तीन स्थानों पर पूर्ण दृष्टि रखते हैं। यही विशेषता है।

अब शंका यह है कि इस दृष्टि विवेचन में कोई नई बात तो है नहीं। सभी जातक ग्रन्थों में पूर्ण दृष्टि इसी प्रकार से मानी गई है। तब 'विशेष बातें बताते हैं', ऐसा कहकर विशेष क्या बताया? अस्तु, इस संदर्भ में ध्यातव्य है कि सर्वत्र ग्रहों की दृष्टि 4 प्रकार की मानी गई है–एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद व पूर्ण। इसका विवेचन इस प्रकार है–

एकपाद दृष्टि–3, 10 भावों पर, *द्विपाद (अर्ध) दृष्टि*–5, 9 भावों पर, *त्रिपाद*–4, 8 भावों पर होती है तथा सप्तम पर सबकी पूर्ण दृष्टि होती है।

अस्तु, पाराशर मत में पूर्ण दृष्टि के अतिरिक्त और कोई दृष्टि विशेष फलादेश में स्वीकार नहीं की गई है। अतः यह विशेषता है। यहाँ अन्यत्र प्रसिद्ध एकपाद दृष्टि को शनि की, द्विपाद दृष्टि को गुरु की व त्रिपाद दृष्टि को मंगल की पूर्ण दृष्टि में समेट दिया गया है। अतः पाराशर मत में केवल पूर्ण दृष्टि ही होती है।

'विशेषतः' शब्द बड़ा गहरा अर्थ रखता है। यदि कहें कि सभी ग्रहों की विशेष दृष्टि सप्तम पर व शनि, गुरु, मंगल की विशेष दृष्टि उक्त स्थानों पर होती है तो इस प्रकार दोनों स्थानों पर विशेषतः शब्द का अन्वय माना जा सकता है और अर्थ सुसंगत हो जाता है।

॥ इत्युडुदायप्रदीपे लघुपाराशर्यां पं. सुरेशमिश्रकृतायां विद्याधरी-हिन्दी व्याख्यायां संज्ञाध्यायः प्रथमः॥

2 फलनिर्णयाध्यायः

त्रिकोणेशों की नित्य शुभता :

सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहाः शुभफलप्रदाः।

जिन ग्रहों को जन्म कुण्डली में त्रिकोण भावों का स्वामित्व प्राप्त हो, वे सभी त्रिकोणेश ग्रह सदैव शुभ फल देते हैं।

नवम व पंचम स्थान निर्विवाद रूप से त्रिकोण हैं। परस्पर पंचम व नवम होना त्रिकोण संज्ञा का आधार है। अत: किसी भी भाव से पांचवां व नवां भाव उसका त्रिकोण होता है। किन्तु सामान्यत: त्रिकोण भावों का आशय लग्न के त्रिकोण भावों (5, 9) से लिया जाता है।

कुछ विद्वानों के मत में लग्न में केन्द्र व त्रिकोण इन दोनों का सहभाव है। कारण यह है कि लग्न, पंचम व नवम भाव परस्पर एक-दूसरे से नवें पाचवें भाव सिद्ध होते हैं तथा लग्न की गणना केन्द्र स्थानों में भी है।

हमारा विचार है कि लघुपाराशरी में लग्नेश का पृथक् विचार आगे किया जा रहा है। अत: यहाँ इस कारिका में लग्न रहित त्रिकोण की ही शुभता बताई गई है और लग्न तो शुभतम माना गया है। इसी प्रकार आगे केन्द्र स्थानों के प्रसंग में भी लग्नरहित केन्द्र ही समझना युक्तियुक्त है।

निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक जन्म कुण्डली में पंचम व नवम भाव के अधिपति सदैव शुभ फल देने वाले होते हैं। स्वभावत: वे क्रूर या सौम्य

हों तब भी त्रिकोणेश होने पर उनकी शुभता निर्विवाद ही रहेगी। अतः कोई भी ग्रह (क्रूर या सौम्य) त्रिकोणेश होकर शुभ हो जाता है। यह पाराशरीय सिद्धान्त है।

अस्तु, इस प्रसंग में एक शंका स्वाभाविक है। सूर्य व चन्द्रमा के अतिरिक्त शेष मंगलादि पाँच ग्रहों को दो-दो राशियों का आधिपत्य मिला है। तब किसी भी द्विनाथ ग्रह की एक राशि त्रिकोण में होने पर, दूसरी राशि या तो केन्द्र में पड़ेगी या षष्ठ-अष्टम में, अथवा तृतीय-एकादश में। तब उस ग्रह को सामान्यतः त्रिकोणेश होने से शुभ फलदाता एवं त्रिषडायेश (3, 6, 11 भावों का आधिपत्य) होने पर अशुभ फलदाता माना जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में यह बात परस्पर विरोधी हो जाती है और (सुन्दोपसुन्द) न्याय से दोनों ही फल नष्ट हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में केन्द्राधिपत्य व त्रिषडायाधिपत्य की विवेचना परम आवश्यक है। इसीलिए अगली कारिकाएं लिखी गई हैं–

केन्द्र व त्रिषडाय के स्वामियों का शुभाशुभत्व :

पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः॥ 6॥
न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपाः यदि।
क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबला उत्तरोत्तरम्॥ 7॥

जन्म कुण्डली में तृतीय, षष्ठ व एकादश स्थानों के स्वामी सभी ग्रह पाप फल देने वाले होते हैं।

यदि शुभ ग्रह केन्द्र स्थानों के स्वामी हों तो वे शुभ फल नहीं देते। यदि पापग्रह केन्द्रों के स्वामी हों तो वे मनुष्य को अशुभ फल नहीं देते हैं।

इन त्रिकोणेशों में से पंचमेश, पंचमेश से नवमेश फिर तृतीयेश से षष्ठेश, षष्ठेश से एकादशेश व फिर क्रमशः लग्नेश, चतुर्थेश, सप्तमेश व दशमेश उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं।

इस गम्भीर भावविवेचन को समझने के लिए कुण्डली के बारह भावों को निम्न वर्गों में बांट लेते हैं–

1. त्रिकोण स्थान–पंचम व नवम।

2. त्रिषडाय स्थान–तृतीय, षष्ठ व एकादश।

3. केन्द्र स्थान–चतुर्थ, सप्तम व दशम।

4. अष्टम स्थान।

5. लग्न।

6. धन व व्यय स्थान–द्वितीय व द्वादश।

सर्वप्रथम त्रिकोण स्थानों के स्वामियों को लें। निर्विवाद रूप से पंचमेश व नवमेश ग्रह सदा शुभ फल देते हैं। नैसर्गिक रूप से ये क्रूर (सूर्य, मंगल, शनि, पापयुक्त बुध व क्षीण चन्द्र) हों अथवा शुभ (पापसंगरहित बुध, पूर्ण चन्द्र, गुरु व शुक्र) हों, किसी भी वर्ग में होने पर इनके शुभ फल पर कोई आँच नहीं आती है। अतः त्रिकोण स्थानेश सदैव शुभ ही सिद्ध हुए।

अब समस्या यह है कि सूर्य व चन्द्र को छोड़कर शेष पाँच ग्रह दो–दो राशियों के स्वामी होते हैं। ऐसी स्थिति में त्रिकोण स्थानों में कर्क या सिंह से पृथक् राशि होने पर उसी ग्रह की दूसरी राशि केन्द्र में या षष्ठ, अष्टम में पड़ेगी। तब उक्त त्रिकोणेश का फल विवेक किस प्रकार से करेंगे? ऐसी स्थिति को ध्यान में रखकर कहा गया है कि 3, 6, 11 भावों के स्वामी पापी होते हैं। तब त्रिकोणेश भी परस्पर विरोधी फल देने वाले बन जाएंगे। इसी प्रकार केन्द्रेश भी यदि शुभ हुए तो वे शुभ नहीं रहेंगे और पाप हुए तो पाप नहीं रहेंगे।

निश्चित नियम है कि त्रिकोणेश शुभ, त्रिषडायेश पाप व केन्द्रेश स्वाभावगत फल को स्थगित कर देते हैं।

तब परस्पर विरुद्ध धर्म वाले ग्रहों का फलदायकत्व अर्थात् शुभाशुभत्व इस प्रकार से निर्णित होगा–

(1) यदि त्रिकोणेश ग्रह की दूसरी राशि केन्द्र स्थानों में पड़े तो त्रिकोणेश शुभ ही माना जाएगा। कारण यह है कि केन्द्रेश यदि पापग्रह हैं तो वे अपने पापफल को नहीं देंगे और शुभ हुए तो अपने शुभफल को छोड़ देंगे। वे केवल अपने स्वभावगत फल को स्थगित मात्र करेंगे। ऐसा आशय कथमपि

ग्राह्य नहीं है कि शुभ केन्द्रेश अशुभ फल नियमतः देंगे और अशुभ केन्द्रेश सदैव शुभ फल देंगे। वे केवल अपने नैसर्गिक शुभाशुभत्व को छोड़कर उदासीन भाव को प्राप्त हो जाएंगे। अतः त्रिकोणेश की दूसरी राशि केन्द्र में पड़ने पर वह ग्रह त्रिकोणेश होने के कारण शुभ व केन्द्रेश होने के कारण सम रहेगा। अतः शुभ+सम=शुभ फलदायक ही माना जाना चाहिए। इस स्थिति में यदि केन्द्रेशों को विपरीत फलदायक माना जाए तो धनु लग्नादि में उत्पन्न व्यक्तियों को सदैव गुरु व बुध अशुभ रहेंगे, जबकि व्यवहार में यह बात देखने में नहीं आती है। अतः केन्द्रेश अपने स्वभाव का स्थगन मात्र करते हैं, न कि विरुद्ध फल का आरोप।

इस प्रसंग में यह सूक्ष्म तारतम्य बैठाया जा सकता है कि त्रिकोणेश+पापकेन्द्रेश=अति शुभ, जैसे कर्क लग्न वालों के लिए मंगल को विशिष्ट योगप्रद माना जाता है।

त्रिकोणेश+शुभकेन्द्रेश=शुभ फलदायक इत्यादि।

(2) त्रिकोणेशों की दूसरी राशि यदि षष्ठ या अष्टम में पड़े तो उन्हें सामान्य शुभ माना जाएगा। कारण यह है कि षष्ठेश यदि पापी है तो अधिक पापी व षष्ठेश यदि शुभ है तो कम पापी होगा।

अतः शुभ त्रिकोणेश+शुभ षठाष्टमेश=सामान्य शुभ।

पाप त्रिकोणेश+पाप षष्ठाष्टमेश=अशुभ।

इस प्रकार सूक्ष्म तारतम्य मस्तिष्क में बिठा लेना चाहिए।

अब केन्द्रेशों को लें। यदि केन्द्रेश ही त्रिषडायाधीश भी हो तो इस प्रकार का तारतम्य रखना चाहिए–

(1) शुभ ग्रह यदि एक साथ केन्द्रों व 3, 6, 11 भावों का आधिपत्य करता हो तो वह केन्द्रेश होने के कारण अपने शुभ फल को स्थगित कर देगा और त्रिषडायाधीश होने से अशुभ हो जाएगा। अतः वह इस स्थिति में सामान्य अशुभ ही रहेगा। जैसे कर्क लग्न में चतुर्थेश व एकादशेश शुक्र अशुभ ही माना गया।

(2) यदि एक ही पाप ग्रह केन्द्रेश व त्रिषडायेश हो तो वह केन्द्रेश होने के कारण शुभ व त्रिषडायेश होने के कारण अशुभ होगा। अत: निष्कर्ष रूप में उसे मिश्रित ही माना जाएगा। हमारे विचार से त्रिषडायेश यदि निसर्ग शुभ ग्रह हो तो वह पापी त्रिषडायेश से कुछ कम ही अशुभ माना जाएगा।

अत: अशुभ तो दोनों ही होंगे; लेकिन शुभ त्रिषडायेश को कुछ कम अशुभ मानना युक्तियुक्त है। कारण यह है कि मूलभूत स्वभाव बिल्कुल समाप्त नहीं होता है।

शेर को कितना ही पालतू बनाएं लेकिन अवसर पड़ने पर उसका मूल हिंसक स्वभाव कथमपि नष्ट न होकर प्रकट अवश्य होगा। यदि सर्वतोभावेन मूल स्वभाव को बदला जा सकना सम्भव हो तो गधे को पीटकर घोड़ा बनाया जा सकता है और शेर को गाय। अत: हमारा निश्चित मत है कि स्वभावत: शुभ या अशुभ ग्रह अपने स्वभाव को सर्वथा नहीं छोड़ते हैं। हाँ, शुभ स्थानेश या अशुभ स्थानेश होने पर उनके फलप्रदत्व में तारतम्य हो जाया करता है। यही आशय इन मूल पंक्तियों से ध्वनित होता है।

अष्टमेश ग्रह के विषय में कई नियम व उपनियम हैं, जिनका विवेचन आगे यथावसर किया जाएगा। सामान्य नियम से अष्टमेश अशुभ ही होता है।

लेकिन इस संदर्भ में हम पाठकों को बताना चाहेंगे कि स्वगृही ग्रह तो स्वस्थ होता है तथा वह शुभ फल ही देता है। अत: केन्द्रेश या त्रिषडायेश यदि स्वगृही हों तो शुभ ही रहेंगे।

अत: तृतीयेश तृतीय में, षष्ठेश षष्ठ में, एकादशेश एकादश में और केन्द्रेश स्वगृह में केन्द्र में ही हों तो वे अवश्य शुभ फल देंगे।

अब मूल की अन्तिम कारिका को लें। वहाँ पर उत्तरोत्तर बलवत्ता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। उसका आशय यह है कि उपर्युक्त पद्धति से उनका शुभत्व व अशुभत्व का विवेक करने के पश्चात् उन्हें भी सूक्ष्म तारतम्य की दृष्टि से क्रम देना चाहिए। अत:

निष्कर्ष इस प्रकार रहेंगे–,

(i) पंचमेश से नवमेश अधिक बली है।

(ii) तृतीयेश से षष्ठेश, षष्ठेश से एकादशेश अधिक बली है।

(iii) लग्नेश से चतुर्थेश, चतुर्थेश से सप्तमेश व सप्तमेश से दशमेश अधिक बली है।

(iv) अथवा त्रिकोणेशों से त्रिषडायेश अधिक शुभ व त्रिकोणेश सबसे अधिक शुभ होते हैं

यहाँ पर 'लग्न' विवादस्पद है। लग्न की विशेषता यह है कि वह त्रिकोण भी है और केन्द्र भी। अत: लग्न के विषय में समझना चाहिए कि वह पाप हो या शुभ, अन्ततोगत्वा शुभ ही माना जाएगा। जब अष्टमेश यदि साथ ही लग्नेश हो तो वह भी शुभ बन जाता है। तब केवल लग्नेश तो सदा ही शुभ होगा, चाहे उसकी दूसरी राशि कहीं भी पड़ी हो। अत: लग्नेश सदैव शुभ है। इसी आधार पर केन्द्र स्थानों के पूर्वोक्त उत्तरोत्तर प्रबलता के सिद्धान्त में लग्न को श्री वेताल शास्त्री जी ने ग्राह्य नहीं माना है। हमारा विचार यह है कि शास्त्री जी की बात तर्कसंगत है। जब यहाँ त्रिकोणों में लग्न का ग्रहण नहीं किया है तो फिर केन्द्रों में भी नहीं करना चाहिए।

अस्तु, केन्द्रेश यदि त्रिकोणेश हो तो योगकारक होता है, यह पाराशर सिद्धान्त है। अत: निर्भ्रान्त रूप से लग्नेश शुभ फल देने वाला ही होगा।

अत: लग्नेश प्रत्येक अवस्था में शुभ फलद रहेगा। सम्भव है कि लग्नेश निर्बल हो, पाप प्रभाव में हो तब लग्न फल देने में असमर्थ हो जाएगा, तब वह असमर्थ होकर केवल अपना फल (शुभ) न दे सकेगा। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं हो सकता कि वह अशुभ फल देगा।

अत: लग्नेश की शुभता व अष्टमेश की अशुभता निर्विवाद है तथा नियम सापेक्ष है। अत: पाराशरी में इनका पृथक् विवेचन किया गया है।

द्वितीयेश व द्वादशेश का शुभाशुभत्व :

लग्नाद् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ॥ 8॥

लग्न से द्वितीय व द्वादश स्थानों के स्वामी ग्रह अपने सहचर भाव या ग्रह के आधार पर अर्थात् उनके समान फल देते हैं। अथवा द्वितीयेश व द्वादशेश ग्रह की दूसरी राशि जिस स्थान में पड़ती हो, उसी स्थान के अनुसार अपना शुभ व अशुभ फल देते हैं।

किसी भी स्थान से बारहवां अर्थात् व्यय स्थान नित्य अशुभ है, यह एक सामान्य नियम है। इनमें भी नवम भाव से व्यय अर्थात् अष्टम स्थान परम अशुभ है, यह भी पाराशर सिद्धान्त है। इसी सामान्य नियम का अपवाद इस कारिका में बताया गया है। इसके स्पष्ट प्रतिपादन के लिए 'लग्न' शब्द का ग्रहण है। आशय यह है कि यद्यपि प्रत्येक भाव से व्यय स्थान का स्वामी अशुभ है, किन्तु लग्न से व्यय स्थान का स्वामी सम अर्थात् न शुभ, न अशुभ होता है। यही सिद्धान्त द्वितीयेश पर लागू किया गया है।

सिद्धान्ततः द्वितीयेश व द्वादशेश सम फल देने वाले होते हैं। सम अर्थात् उदासीन होने पर क्या वे व्यक्ति के भाग्य निर्माण में कोई योगदान करेंगे? इसका उत्तर स्पष्ट स्वीकारात्मक है। कहना है कि वे सम होते हुए भी तात्कालिक परिस्थितियों से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। जैसे–बुध ग्रह को शुभ या पाप किसी एक श्रेणी में एकान्ततः नहीं रखा जाता है। इसकी शुभता या अशुभता परिस्थितियों पर निर्भर है। यदि पापग्रहों की संगति में हो तो पाप और शुभ संगति में रहे तो शुभ अर्थात् गंगा गए गंगादास, जमना गए जमनादास। ठीक यही स्थिति व परिपाटी लग्न से द्वितीय व द्वादश के अधिपतियों की है। वे स्वयं स्वतन्त्र्येण फल देने में असमर्थ हैं। जैसी परिस्थितियों में रहेंगे, तदनुसार ही फल देंगे। इस बात को पारिभाषिक रूप में पाराशरी में दो नाम दिए गए हैं–

(1) परसाहचर्य

(2) स्थानान्तरानुगुणता।

पर अर्थात् दूसरे का, साहचर्य अर्थात् संगति परसाहचर्य कहलाता है। आशय यह है कि द्वितीयेश व द्वादशेश जिस किसी अन्य ग्रह के

साथ रहेंगे, उसी ग्रह के गुण-दोषों को तुरन्त ग्रहण कर लेंगे। यदि त्रिकोणेशों के साथ रहें तो शुभ, त्रिषडायेशों के साथ अशुभ और केन्द्रेशों के साथ सम रहेंगे।

इसी प्रकार त्रिकोणादि भावों में रहेंगे तो क्रमशः शुभ, अशुभ व सम समझे जाएंगे। केन्द्र में यदि ये पाप राशि में बैठे हों तो स्वयं भी पापी हों तो योगप्रद होते हैं।

इसी प्रकार जिस राशि में होंगे, उस राशि व उसके राशीश का प्रभाव भी ग्रहण कर लेंगे।

अतः उनका फल विवेक करते समय तीन बातें देखें–

(1) जिस भाव में हों, तदनुसार फल देते हैं।

(2) जिस भावेश के साथ हों, उसके अनुकूल फल देते हैं।

(3) जिस राशि में हों, उस राशीश का प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं।

अतः द्वितीयेश द्वितीय में व द्वादशेश द्वादश में हों तो सम फलदायक ही होंगे। विशेष योगप्रद न बन सकेंगे। लेकिन ये पापराशि में या पाप युक्त होकर केन्द्र में बैठें तो कुछ योगप्रद होते हैं।

कर्क लग्न में उत्पन्न जातकों के लिए द्वितीयेश सूर्य व द्वादशेश बुध (साथ ही तृतीयेश होने के कारण) सम होकर भी यदि केन्द्र में पापराशि (सप्तम, दशम) में बैठें तथा भावेश से सम्बन्ध करें तो योगप्रद होते हैं। यही कारण है कि कर्क लग्न में सूर्य बुध का श्रेष्ठ केन्द्र स्थान दशम व सप्तम माना जाता है।

बृहज्जातक में जिस महा राजयोग का उल्लेख है उसमें सूर्य की (कर्क लग्न में) दशम स्थिति तथा बुध, शुक्र, चन्द्रादि की एकादश स्थिति मानी गई है। (देखें बृहज्जातक, राज., श्लोक-9)

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है–

(1) द्वितीयेश व द्वादशेश यदि त्रिकोण स्थानों (5, 9) या इनके स्वामियों के साथ बैठें तो बहुत शुभ फल देते हैं।

(2) यदि लग्न में या लग्नेश के साथ हों तो परम शुभ हैं।

(3) यदि 3, 9, 11 स्थानों में शुभ राशि में हों या शुभ त्रिषडायेश के साथ हों तो सामान्य शुभ होते हैं।

(4) यदि पापराशि में 3, 9, 11 में हों तो पापी त्रिषडायेश के साथ हों तो पाप फल देंगे।

(5) यदि केन्द्र स्थानों में या शुभ केन्द्रेश के साथ बैठें तो सम अर्थात् शुभत्व का निषेध होगा, अशुभत्व का आरोप नहीं।

(6) यदि पापराशि में केन्द्र में हों या पापी केन्द्रेश के साथ हों तो अशुभ नहीं होते हैं।

अब दूसरे शब्द स्थानान्तरानुगुणता को देखें। सूर्य व चन्द्रमा को एक-एक राशि का ही आधिपत्य मिला है। शेष भौमादि पाँच ग्रहों को दो-दो राशियों का स्वामित्व मिला है।

स्थानान्तर अर्थात् दूसरा (अन्य) स्थान के अनुगुण अर्थात् अनुकूल, समान, सहयोगी, तुल्य फल ये देते हैं।

इस प्रकार द्वितीयेश व द्वादशेश ग्रहों की दूसरी राशि जिस स्थान में पड़ती हो, उसी स्थान के आधार पर इनके शुभाशुभत्व का निर्णय किया जाएगा।

(1) द्वितीयेश व द्वादशेश यदि सूर्य या चन्द्र हों तो उनका फल परसाहचर्य के आधार पर निर्णित होगा। कारण यह है कि इनका कोई स्थानान्तर नहीं होता है।

(2) द्वितीयेश व द्वादशेश की दूसरी राशि यदि त्रिकोणों में या लग्न में पड़े तो शुभ फल देंगे।

(3) इनकी दूसरी राशि 3, 6, 11 में पड़े तो पाप ग्रह होने पर पाप एवं शुभ द्वितीयेश द्वादशेश होने पर सामान्य शुभ फल देंगे।

(4) यदि इनकी दूसरी राशि केन्द्र में पड़े और ये स्वयं पापी हों तो शुभ रहेंगे।

(5) यदि केन्द्र में इनकी दूसरी राशि हो और ये स्वयं शुभ ग्रह हों तो सामान्य रहेंगे।

इसी कारण द्वितीयेश होकर सूर्य, चन्द्र या राहु-केतु अकेले इन स्थानों में बैठें तो सम (उदासीन) ही रहते हैं।

इस सारी व्यवस्था को स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

जन्म–1 नवम्बर 1944 प्रात: 10.00 बजे दिल्ली।

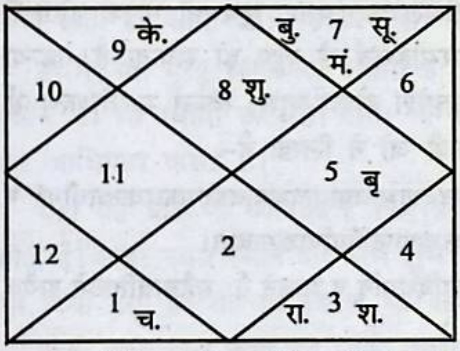

ये सज्जन भवन निर्माण व्यवसाय से सम्बद्ध हैं तथा अच्छी आर्थिक स्थिति वाले हैं। वर्तमान में राहु की महादशा है। इस समय में इनका व्यापार खूब बढ़ा, लेकिन स्वास्थ्य खराब रहा। स्वास्थ्य या मारकत्व के विषय में आगे स्पष्ट करेंगे। अभी आर्थिक स्थिति (राजयोग) को लें। द्वितीयेश गुरु केन्द्र में पाप राशि में है, अत: शुभ है। इसकी दूसरी राशि त्रिकोण में पड़ती है, अत: दूसरे प्रकार से भी गुरु परम शुभ है। इसी तरह द्वादशेश शुक्र भी केन्द्र में पापराशि में है तथा इसकी दूसरी राशि केन्द्र में ही है। अत: यह भी कुल मिलाकर शुभ है। फलस्वरूप गुरु, शुक्रादि की अन्तर्दशा में अपूर्व वृद्धि हुई।

इस सारे विवेचन में एक बात अवश्य ध्यातव्य है कि द्वितीयेश व द्वादशेश को पूर्वोक्त प्रकार से जो शुभाशुभत्व प्राप्त होता है वह केवल राजयोगादि प्रसंग में ही ग्राह्य है।

द्वितीय स्थान मारक स्थान भी है और द्वादश स्थान शरीर हानि स्थान है। अत: इस हैसियत से द्वितीयेश व द्वादशेश को जो शरीर हानि प्रदत्व व मारकत्व मिलता है उस फल का बाध पूर्वोक्त शुभाशुभ या सम फल से नहीं होता है।

आशय यह है कि द्वितीयेश बृहस्पति (पूर्वोक्त उदाहरण) की केन्द्र स्थिति से व दूसरी राशि के त्रिकोण में होने से धन, भाग्य, मान, सम्मान आदि के विषय में शुभता मिली है। यह एक पक्ष है।

द्वितीयेश गुरु मारकेश भी है, यह दूसरा पक्ष है। इन दोनों पक्षों का आपस में कोई टकराव नहीं है। बृहस्पति यहाँ अपनी दशा में धन

लाभ कराएगा, लेकिन मारकेश की हैसियत से वह मृत्यु या मृत्यु तुल्य कष्ट भी देगा। अतः पूर्वोक्त शुभंता व मारकत्व एक ही ग्रह में रह सकते हैं।

इसी प्रकार वृष लग्न में द्वितीयेश व पंचमेश बुध भी मारक होता है तथा स्थानान्तरानुगुणता से या परसाहचर्य से शुभ हो सकता है। कन्या लग्न में शुक्र भी द्वितीयेश व नवमेश होकर शुभ; किन्तु मारकेशत्व से युक्त होता है। पं. विनायक शास्त्री जी ने लिखा है–

"......स्वनिर्णय प्राप्त मारकत्वेन शुभत्वपापत्वसमत्वयोगकारकत्वादीनां न बाधः। एषां सर्वेषां तत्तदवसरे मारकत्वप्राप्तेर्निर्णयाङ्गत्वात्।

तस्मान्मारकत्वं स्वोपजीव्यशुभत्वादिधर्मान् न बाधते तैः सहैवावतिष्ठते इत्येव न्याय्यमिति दिक्।" (लघु पारा.टी.)

अर्थात् मारकेशत्व व शुभ फल प्रदत्व परस्पर बाधित नहीं होते हैं, एकत्र साथ-साथ रह सकते हैं।

अष्टमेश सम्बन्धी विशेष नियम–

भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
सः एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपिचेत्स्वयम्॥ 9॥

भाग्य अर्थात् नवम स्थान से द्वादश (अष्टम भाव) स्थान का स्वामी अर्थात् अष्टमेश इसी कारण शुभ फल नहीं देता। यदि वही अष्टमेश साथ ही लग्नेश भी हो तो वह शुभ फल से भी योग कराता है।

पिछली कारिका में बता चुके हैं कि लग्न से व्यय स्थान व द्वितीय स्थान सम होते हैं। वहीं पर यह संकेत दिया गया था कि प्रत्येक स्थान से व्यय स्थान तत्तत् स्थानों के लिए अशुभ होते हैं, यह एक सामान्य नियम है। जैसे सप्तम स्त्री स्थान से द्वादश (षष्ठ स्थान) पत्नी के लिए व्यय अर्थात् हानिकारक होता है। व्यय शब्द में सभी प्रकार के व्यय, यहाँ तक कि शरीर का व्यय भी सम्मिलित है। इसी सामान्य नियम का एक अपवाद पिछली कारिका में बताया गया है। अब व्ययेश के विषय में एक अन्य नियम बताया जा रहा है। सभी व्यय स्थानों में नवम स्थान का व्ययेश परम अशुभ है। अर्थात् नवम से द्वादश अष्टम भाव है। अतः

अष्टमेश को जो परम अशुभता प्राप्त होती है, उसमें नवम अर्थात् भाग्य स्थान का व्ययेश होना भी प्रमुख कारण है।

इस प्रकार त्रिषडायेश व केन्द्रेश आदि से भी अधिक यह अष्टमेश पापी होता है। सामान्यत: यह अष्टमेश परम पापी होता है।

प्रथम, यह मृत्यु स्थान का स्वामी है तथा फिर भाग्य स्थान से द्वादश स्थान का भी स्वामी होता है। अत: भाग्य हानि अर्थात् दुर्भाग्य एवं मृत्यु का आधिपत्य करता है।

यहाँ यह बात भी ध्यातव्य है कि त्रिकोणों में नवम स्थान परम बली होता है। अत: नवम स्थान को परम शुभ होने के कारण एक नाम **'शुभ'** भी दिया गया है। यह त्रित्रिकोण भी कहलाता है।

अत: परम शुभ फल देने वाले भाग्य स्थान का व्ययेश परम अशुभ होना ही चाहिए। अत: सभी पापियों से यह अष्टमेश निर्विवाद रूप से पापी होता है। **इसका पापत्व किसी भी स्थिति में समाप्त नहीं होता है।** लेकिन इसकी अशुभता में उतार चढ़ाव होता है। इसी विषय में यह व्यवस्था दी गई है–

(1) लग्नेश ही यदि अष्टमेश हो तो वह शुभ सन्धाता होता है। आशय यह है कि अष्टमेश ग्रह की दूसरी राशि यदि लग्न में पड़ती हो तो वह कुछ शुभ फल का प्रभाव भी अपने साथ रखता है।

वास्तव में यहाँ शुभ सन्धाता शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि अष्टमेश होने के कारण लभ्यमाण अशुभता में कुछ कमी करके लग्नेश होने के कारण शुभ फल को भी सन्धान योग कराता है। सन्धान शब्द का अर्थ जोड़ना है। अत: काफी हद तक अष्टमेशत्व का दोष परिहृत होकर उक्त स्थिति में वहाँ शुभ फल भी मिलता है। इसका आशय यह बिल्कुल नहीं है कि लग्नेश होने के कारण अष्टमेश बिल्कुल शुभ हो जाता है। अष्टमेश होने का दोष तो लग्नेश होने पर भी बना रहता है; लेकिन उसकी मात्रा, प्रभाव, शक्ति व सीमा में नि:सन्देह रूप में कमी आ जाती है। अत: वह शुभ फल लग्नेश की हैसियत से अधिक देगा तथा अष्टमेश होने के कारण उसका अशुभ फल गौण हो जाएगा।

सामान्यतः एक ही ग्रह को जब दो विरोधी गुण प्राप्त होते हैं तो उनकी समाप्ति हो जाती है, ऐसा ज्योतिषजगत् का प्रचलन है। वराहमिहिर ने कहा है कि एक ही ग्रह को यदि दो विरोधी गुण प्राप्त हो रहे हों तो उनमें से जिसकी मात्रा अधिक होगी, वही फल मिलेगा। यदि वे दोनों फल समान बल वाले हों तो सुन्दोपसुन्द न्याय से ध्वस्त हो जाएंगे–

एकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोधे,
नाशं वदेद्यदधिकं परिपच्यते तत्।
नान्यो ग्रहः सदृशमन्यफलं हिनस्ति,
स्वां स्वां दशामुपगताः स्वफलप्रदाः स्युः॥

(बृहज्जातक, दशा. श्लो. 23)

अतः इस सामान्य नियम का भी यहाँ अपवाद हो जाता है। अतः लग्नेश व अष्टमेश होने के कारण प्राप्त होने वाले दोनों विरुद्ध फलों को वह ग्रह देगा। यही आशय 'सन्धाता' शब्द के द्वारा प्रकट किया गया है।

अब यह बात ध्यातव्य है कि ऐसी स्थिति, जब लग्नेश व अष्टमेश एक ही ग्रह हो, कब हो सकती है?

तुला लग्न व मेष लग्न में यह स्थिति बनती है। शेष लग्नों में ऐसा सम्भव नहीं है। तुला लग्न होने पर लग्नेश शुक्र की दूसरी राशि वृष अष्टम स्थान में होती है। इसी प्रकार मेष लग्न में मंगल की दूसरी राशि वृश्चिक भी अष्टम स्थान में होती है।

अतः तुला व मेष लग्न में उत्पन्न जातकों के लिए शुक्र व मंगल शुभ फल का योग भी कराएंगे। **लोमशसंहिता** का वचन है–

अष्टमाधिपतेर्दोषस्तुलामेषे नहि क्वचित्।
अलौ षष्ठपदोषो न वृषभेऽपि न दोषभाक्॥

(लोमशसंहिता)

'अष्टमेश होने का दोष तुला व मेष लग्न में शुक्र व मंगल को नहीं होता है।

इसी प्रकार वृश्चिक व वृष लग्न में षष्ठेश होने का दोष भी नहीं होता है।

निष्कर्ष यह है कि लग्न स्थान में ऐसी विशेषता है कि वह अपने प्रभाव से बड़े-से-बड़े अशुभ फल को भी घटा सकता है। अथवा

अतिमात्र न्यून कर सकता है। लग्न में ऐसी क्या विशेषता है, यह प्रश्न यहाँ स्वाभाविक है।

लग्न केन्द्र व त्रिकोण स्थान है, अर्थात् लग्न में त्रिकोणत्व व केन्द्रत्व ये दोनों धर्म पाए जाते हैं। प्रथम, पंचम व नवम ये तीनों भाव परस्पर त्रिकोण कहे जाते हैं। सरल नियम यह है कि प्रत्येक भाव से 5, 9 भाव त्रिकोण हैं। अतः लग्न को भी त्रिकोणत्व प्राप्त होता है क्योंकि वह स्वयं पाँचवें से नौवां व नवम से पाँचवां पड़ेगा।

अब शंका यह है कि जब लग्न भी त्रिकोण है तो उसकी गणना निर्विवाद रूप से त्रिकोणों में क्यों नहीं होती है?

इस विषय में वक्तव्य है कि लग्न सर्वांशतः त्रिकोण ही नहीं है, अपितु उसे 1, 4, 7, 10 स्थानों में परस्पर केन्द्र संज्ञा भी प्राप्त होती हैं। अतः 1, 5, 9 परस्पर त्रिकोण व 1, 5, 7, 10 परस्पर केन्द्र हैं। लग्न को दोनों गुण प्राप्त हुए हैं। अतः लग्न सभी त्रिकोणों में परम शुभ माना जाना चाहिए। यही कारण है कि परम अशुभ अष्टमेश की अशुभता को परम शुभ लग्नेश अवश्यमेव प्रभावित करेगा।

यह गुण लग्न से पंचम व नमव स्थानों को प्राप्त नहीं है। अतः अष्टमेश की दूसरी राशि यदि लग्नातिरिक्त केन्द्र या त्रिकोण में पड़े तो उसकी अशुभता का ह्रास नहीं होगा अथवा लग्न की अपेक्षा अति सामान्य या सामान्य ह्रास होगा।

इसी कारण से शनि कर्क लग्न में अशुभ भी माना जाता है। वह कारक व मारक दोनों ही है।

अस्तु, लोमश मुनि के उक्त वचन में वृश्चिक व वृषभ लग्न का भी उल्लेख किया गया है। वृश्चिक में मंगल की व वृषभ में शुक्र की दूसरी राशि षष्ठ स्थान में पड़ती है; त्रिषडायेश तो अष्टमेश की अपेक्षा कम पापी है। यह बात स्वतः सिद्ध है। अतः लग्न जब अष्टम भाव के दोष को कम कर सकता है तो उससे कम दुष्ट षष्ठ भाव के दोष को क्यों नहीं कम करेगा? अर्थात् अवश्य करेगा। तृतीय या एकादश में लग्नेश होकर किसी की भी दूसरी राशि नहीं पड़ती। वृश्चिक व वृष में षष्ठ में

दूसरी पड़ती है। सीधी-सी बात है कि जो लग्नेश मृत्यु को वश में कर सकता है वह रोग (षष्ठ) को क्योंकर वश में न करेगा।

जो व्यक्ति शेर को मारने की शक्ति रखता हो, वह कुत्ते का शिकार क्यों नहीं कर सकेगा? अतः यह बात यहाँ पर स्वयं सिद्ध हो जाती है कि लग्नेश की दूसरी राशि यदि षष्ठ में भी पड़ती हो तो वह षष्ठेशत्व के दोष से काफी हद तक मुक्त हो जाएगा। इसी कारण उक्त वचन में वृश्चिक व वृष लग्न का उल्लेख किया गया है।

पण्डित विनायक शास्त्री 'वेताल' का स्पष्ट मत है कि लग्नेश की दूसरी राशि यदि केन्द्र में हो तो केन्द्रेशत्व के दोष को भी यह लग्नेशत्व निश्चित रूप से कम करेगा। जैसे मिथुन लग्न में या कन्या लग्न में दोनों राशियाँ परस्पर केन्द्र हैं तथा धनु, मीन भी परस्पर केन्द्र हैं। अतः लग्नेशत्व व केन्द्रेशत्व बुध व गुरु को ही प्राप्त हो सकता है। इन लग्नों में उत्पन्न व्यक्ति को बुध व गुरु क्रमशः अवश्यमेव शुभ फल भी देंगे।

'अष्टमेशस्यापि दोषपरिहर्तुर्लग्नेशस्य षष्ठेशत्वेन केन्द्रेशत्वेन।
प्राप्तस्याशुभफलस्य परिहारकत्वं भवत्येत्यपि स्फुटत्वादवसेयम्।।

(लघु. पा., संस्कृत टीका)

अतः लग्नेश में वह शक्ति है जो बड़े-से-बड़े अशुभ फल को भी कम कर सकती है।

यह सामान्य नियम स्वयं ही यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि लग्न स्थान परम शुभ व अष्टम स्थान परम अशुभ होता है।

केन्द्राधिपत्य दोष के विशेष नियम :

केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान्गुरुशुक्रयोः।
मारकत्वेऽपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थितिः।। 10।।
बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि भवेत् तदनु तद्विधः।
न रन्ध्रेशत्व दोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत्।। 11।।

बृहस्पति व शुक्र को परम शुभ होने के कारण केन्द्रेश होने का परम दोष होता है।

इन्हें मारकत्व प्राप्त होने पर उतना दोष नहीं होगा जितना कि स्वगृही होकर मारक स्थान में ही बैठने से होगा।

इन दोनों से कम मारक बुध, उससे कम चन्द्रमा मारक होगा।

यहाँ पर सम्बन्ध-सम्बन्धि कल्पना दुष्कर होने के कारण इस प्रसंग की व्याख्या नाना प्रकार से व असंगति युक्त ढंग से की जाती है। अतः स्पष्ट करने के लिए एक-एक बात को लेते हैं।

केन्द्राधिपत्य दोष—पलहे यह बात स्पष्ट की जा चुकी है कि शुभ ग्रहों की राशि यदि केन्द्र स्थानों में पड़े तो वे सम हो जाते हैं। अर्थात् शुभ फल देने की अपनी सामर्थ्य खो बैठते हैं।

शुभ केन्द्रेश की दूसरी राशि यदि केन्द्रेतर स्थान में पड़े तो क्या व्यवस्था होगी, इसका विवेचन पीछे व्याख्या में (श्लोक 6-7) किया जा चुका है। अब प्रश्न यह है कि केन्द्रेश की दोनों राशियां यदि केन्द्र में ही पड़ें तो उन्हें शुभ फल देने वाला नहीं माना जाएगा। ऐसी स्थिति मिथुन, कन्या, धनु, मीन लग्नों में हो जाती है। यदि नित्य नैसर्गिक शुभ ग्रह ही सम हो गए तो जीवन में शुभ फल अत्यन्त कम हो जाएगा।

गुरु व शुक्र बिना किसी विवाद या उपाधि, शर्त के स्वाभाविक शुभ हैं। जबकि बुध व चन्द्रमा के साथ शर्त जुड़ी है कि पापरहित होने पर बुध और वर्धमान होने पर चन्द्रमा को शुभ माना जाएगा। अन्यथा वे दोनों ग्रह अशुभ ही रहेंगे। गुरु व शुक्र निरुपाधिक रूप से निसर्ग शुभ हैं। यदि ये दोनों केन्द्राधिपति होकर सम हो जाएं, उदासीन हों तो जीवन में बड़े शुभ फल को देने की शक्ति में अत्यन्त कमी हो जाएगी। अतः व्यक्ति को विशेष शुभ फल नहीं मिलेगा। एतदर्थ दोनों राशियां यदि केन्द्र में ही हों तो गुरु व शुक्र को महान् दोष लगता है।

अब प्रश्न यह है कि बृहस्पति की राशियां तो केन्द्र में पड़ सकती हैं, किन्तु शुक्र की दोनों राशियां केन्द्र में कभी भी नहीं हो सकती हैं। तब गुरु व शुक्र के स्थान पर गुरु व बुध क्यों नहीं कहा? कारण यह है कि बुध की दोनों राशियां केन्द्र में हो सकती हैं।

इस विषय में ध्यान रखना है कि अगली पंक्ति में मारकत्व का सम्बन्ध जोड़ा जा रहा है। अतः सरलार्थ इस प्रकार है—

बृहस्पति व शुक्र की दोनों राशियां या कोई एक राशि केन्द्र (4, 7, 10) में होने पर उनकी शुभता उदासीन हो जाएगी।

सभी शुभ ग्रहों में ये सबसे बड़े हैं तो इनकी फल प्रदान शक्ति में कमी आने से वास्तविक शुभ फलों का असह्य ह्रास होगा। यह सामान्य नियम है।

अतः शुक्र या गुरु की कोई राशि केन्द्र स्थान में पड़े तो वह परम शुभ फलदायक ग्रह होने के कारण उदासीन होकर शुभ फल को घटा देगा।

मारकत्व निर्णय

यह बात ध्यान देने योग्य है कि केन्द्र स्थानों (4, 7, 10) भावों का ही यहाँ ग्रहण होगा। इन केन्द्र स्थानों में से सप्तम स्थान मारक स्थान भी होता है। दो मारक स्थानों (2, 7) में से सप्तम स्थान अधिक प्रबल मारक है। अब गुरु या शुक्र की राशि 4, 10 में पड़े तो उतनी अशुभ नहीं होगी जितनी कि सप्तम में पड़ने पर मानी जाएगी। तब गुरु व शुक्र को केन्द्रेश होने के कारण शुभ फलों के प्रति उदासीनता प्राप्त हो जाएगी और साथ ही मारकेशत्व भी प्राप्त होगा। अतः शुक्र व गुरु की राशि सप्तम केन्द्र में प्रबल मारक हो जाएगी।

अब कल्पना कीजिए, गुरु व शुक्र अपनी राशि में यदि मारक स्थान सप्तम में बैठ जाए तो वह मारक, मारकेश व सम (किंचित् अशुभ) ग्रह होकर महान् दोषदायक ग्रह हो जाएगा। स्वक्षेत्री होकर उसकी मारकत्व शक्ति और अधिक बढ़ जाएगी। अतः कारिका की दूसरी पंक्ति में कहा गया है कि गुरु व शुक्र की राशि यदि सप्तम मारक स्थान में पड़े तथा वे वहीं पर स्थित भी हों तो प्रबल मारक सिद्ध होंगे। अर्थात् केन्द्रेश होकर गुरु व शुक्र शुभ नहीं होते। साथ ही यदि वे मारकेश हो जाएं तो अधिक अशुभता प्राप्त कर लेंगे। यदि वहीं मारक स्थान में अपनी राशि में स्थित हो जाएं तो क्रमशः अधिक मारक अर्थात् महान् दोषाधायक हो जाएंगे।

यदि गुरु की एक राशि सप्तम में पड़े तो उसकी दूसरी राशि भी सदैव किसी अन्य केन्द्र स्थान में ही पड़ती है।

शुक्र की एक राशि यदि सप्तम में पड़े तो उसकी दूसरी राशि या तो द्वादश हानि स्थान में पड़ेगी अथवा दूसरे मारक स्थान में द्वितीय में पड़ेगी। इसी कारण से गुरु व शुक्र को उक्त स्थिति में प्रबल मारक माना गया है। यह बात प्रत्यक्ष है।

बुधादि अन्य शुभ ग्रहों की व्यवस्था

कारिका की तीसरी पंक्ति में कहा गया है कि गुरु व शुक्र की अपेक्षा बुध कम मारक है और बुध की अपेक्षा चन्द्रमा और भी कम मारक है।

इसका अभिप्राय यह है कि गुरु व शुक्र तो विशेषतः सप्तम केन्द्रेश होकर विशेष मारक हो जाते हैं। अब पाप संग रहित बुध अथवा वर्धमान चन्द्रमा यदि केन्द्रेश हों अथवा सप्तमेश हों तो क्रमशः इन्हें उत्तरोत्तर कम अशुभता प्राप्त होगी।

पहले बुध को लें। बुध की एक राशि यदि सप्तम में पड़े तो दूसरी राशि केन्द्र में ही रहेगी। अतः सप्तम में बुध की राशि होने पर यदि बुध स्वयं मारक स्थान में पड़े तो वह भी मारक होगा। लेकिन गुरु व शुक्र की अपेक्षा वह कम मारक रहेगा।

चन्द्रमा की एक राशि है। अतः कर्क राशि यदि 4, 10 स्थानों में पड़े तो कम अशुभ होगी और सप्तम में कर्क राशि पड़ने पर वह अधिक केन्द्रेश दोष से युक्त रहेगा। यदि स्वयं चन्द्रमा स्वराशि में सप्तम स्थान में हो तो वह और अधिक मारक हो जाएगा, लेकिन इसका मारकत्व बुध की अपेक्षा कम रहेगा।

यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुरु, शुक्र, बुध व चन्द्रमा यदि केन्द्रों में अन्य राशियों में बैठे हों अर्थात् स्वगृही न हों तो उन्हें मारकत्व प्राप्त नहीं होता। केवल केन्द्र स्थिति में ही मारकेशत्व नहीं मिलता, अपितु केन्द्राधिप व केन्द्र स्थिति दोनों साथ हों तभी मारकत्व मिलेगा। इस प्रकार विवेक पूर्वक इनका अशुभत्व समझ लेना चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि केन्द्रेश होकर केन्द्र में ही स्थित होने पर गुरु व शुक्र को, तत्पश्चात् बुध को, तत्पश्चात् चन्द्र को मारकत्व प्राप्त होता है। केन्द्रों में भी सप्तम केन्द्र का विशेष विचार करना होगा।

सूर्य व चन्द्र का विशेष नियमः

अब सूर्य व चन्द्रमा के विषय में विशेष नियम का प्रतिपादन करते हैं। पहले बताया जा चुका है कि भाग्य स्थान का व्ययेश अष्टमेश ग्रह कोई भी हो, वह पापिष्ठ हो जाता है।

इस सामान्य नियम के अपवाद स्वरूप ग्यारहवीं कारिका की अन्तिम पंक्ति लिखी गई है। कहा गया है कि सभी अष्टमेश पापी होते हैं; परन्तु सूर्य व चन्द्रमा की राशि यदि अष्टम स्थान में पड़े तो उन्हें अष्टमेश होने का महान् दोष नहीं मिलता।

इसका अभिप्राय है कि धनु या मकर लग्न में जन्म होने पर क्रमशः चन्द्रमा व सूर्य को अष्टमेशत्व प्राप्त होता है। इस स्थिति में ये उतने दोषप्रद नहीं होते, जितने कि अन्य अष्टमेश ग्रह दोषद होंगे।

कुछ लोग समझते हैं कि अष्टमेश सूर्य व चन्द्रमा शुभ फल देते हैं, यह साक्षात् भ्रम है। सामान्य नियम है कि अष्टमेश कोई भी हो वह पापतम है। केवल सूर्य व चन्द्रमा की राशि अष्टम में होने पर उन्हें अष्टमेशत्व का दोष तो अवश्य होगा। लेकिन अन्य ग्रहों की अपेक्षा कम रहेगा, यही वास्तविक आशय है।

इस स्थिति में भी यह तारतम्य बनाया जा सकता है कि अष्टमेश सूर्य व चन्द्रमा यदि अशुभ स्थानों में हों तो अधिक अशुभ होंगे और अष्टम में सवगृही हों तो बहुत मामूली अशुभ रहेंगे। अतः अष्टमेश सूर्य व चन्द्रमा को मन्दतर दोष तो अष्टमेश होने पर रहेगा, यह बात अनुभव सिद्ध व शास्त्र सम्मत है।

ग्रहों की योगकारिता का निर्णय :

कुजस्य कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता शुभकारिता।
त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः॥ 12॥

मंगल (पापग्रह) दशम स्थान (केन्द्र) का स्वामी होने से ही केवल शुभ फल नहीं देता। केन्द्रेश होने पर ग्रह सम हो जाता है। यदि वह साथ ही त्रिकोण स्थानों का भी स्वामी हो तभी शुभ फल देने में समर्थ होगा।

केन्द्र व त्रिकोण के अधिपतियों का योग निश्चय से योगप्रद होता है। **'केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योगकारकौ'** नियम के अनुसार जो ग्रह एक साथ केन्द्र व त्रिकोण का अधिपति हो तो वह भी योगकारक कहलाएगा। पराशर ने इसी आशय को आगामी अध्याय में प्रकट किया है। वहाँ विस्तार से विवेचन करेंगे। अभी इतना जान लेना पर्याप्त है कि केन्द्र

व त्रिकोण स्थान का स्वामी कोई एक ही ग्रह हो तो वह परम योगकारक होता है। यथा–कर्क लग्न में मंगल की एक राशि दशम स्थान में पड़ती है जो सभी केन्द्र स्थानों में पूर्व प्रतिपादित उत्तरोत्तर बलवत्ता के नियम से बली केन्द्र है। मंगल की दूसरी राशि त्रिकोण स्थान पंचम में पड़ती है। अब निश्चय से मंगल इन जातकों का परम कारक ग्रह हो जाता है।

यदि मंगल कर्क लग्न में दशम स्थान में बैठ जाए तो परम प्रतापी राजयोग या आधिपत्य को प्रदान करेगा। हमारा विचार है कि **'दशमेऽंगारको नास्ति स जातः किं करिष्यति'** वाली बात कर्क लग्न में ही सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है। कारण यह है कि दशम में स्थित मंगल स्वयं मूल त्रिकोणी होगा। फिर वह लग्न को, पंचम त्रिकोण में अपनी दूसरी राशि को और चतुर्थ स्थान को जो लोकप्रियता, धन–सम्पदा, वाहन आदि से सम्बद्ध है, भी पूर्ण दृष्टि से देखेगा। अतः दशमस्थ मंगल कर्क में परम योगकारक माना गया है। इसी प्रकार सप्तम में उच्चतम मंगल भी परम योग कारक सिद्ध होगा।

इनके पीछे वास्तव में केन्द्र व त्रिकोण सम्बन्ध का पाराशरी ज्योतिष का मूलभूत सिद्धान्त कार्य कर रहा है।

कर्कटे जायमानस्य भौमो योगप्रदो भवेत्।
पंचमे वाथवा राज्ये योगदो भवति ध्रुवम्॥

(भावार्थ रत्नाकर)

यदि कर्क लग्न में पंचम में मंगल हो तो योगकारक है। लेकिन हमारे विचार में पंचमस्थ होकर यह दशमस्थ की अपेक्षा कम बली योग बनाता है।

उस स्थिति में यह दशम पर कोई दृष्टि नहीं रखता है। तब इसकी पूर्ण दृष्टि अष्टम भाव, एकादश व द्वादश पर होने के कारण विशेष फलीभूत नहीं होती है।

अस्तु, निष्कर्ष यह है कि पापी ग्रह केन्द्रेश होने पर पाप फल नहीं देते हैं, यह नियम पीछे प्रतिपादित किया है। हमने व्याख्या में यह प्रतिपादित किया है कि वे पापी केन्द्रेश अपना फल दूसरे स्थान में पड़ने वाली राशि के आधार पर देते हैं।

अत: केन्द्रेश (पाप ग्रह) यदि साथ ही त्रिकोणेश हो तभी वह अपना श्रेष्ठ फल देगा, जैसे कर्क लग्न में दशमेश व पंचमेश मंगल।

कारिका में विषय को स्पष्ट करने के लिए कुज अर्थात् मंगल का उदाहरण दिया गया है।

यहाँ पर मंगल से सभी पाप ग्रहों का व दशम भाव से सभी केन्द्र स्थानों का ग्रहण करना अभीष्ट है।

कारण यह है कि दो राशियों के अधपति शनि व मंगल में से मंगल अधिक निसर्ग बली होता है–

शकुबुगुशुचराद्याः वृद्धितो वीर्यवन्तः।

(बृहज्जातक, ग्रहयोनि. 21)

'शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा व सूर्य क्रमश: उत्तरोत्तर अधिक निसर्ग बली होते हैं।

पाप ग्रहों में यद्यपि सूर्य सर्वाधिक निसर्ग बली है तथापि उसकी एक ही राशि है और उसे कुछ आचार्य पाप न मानकर क्रूर मानते हैं। फिर भी पापत्व के तारतम्य से भी सूर्य सब से पीछे है। इन्हीं कारणों से पापियों में से मंगल को चुना गया है जो सभी पापी केन्द्रेशों का प्रतिनिधित्व करेगा। तब शनि का भी ग्रहण हो जाएगा।

अत: तुला लग्न में शनि को भी इसी प्रकार से श्रेष्ठ माना जाना युक्ति युक्त है।

तुला लग्न में शनि यदि पंचम में हो तो वह सप्तम भाव को, एकादश भाव को और धन भाव को पूर्ण दृष्टि से देखकर इन सब स्थानों की वृद्धि करेगा तथा परम योगकारक बन जाएगा।

यदि चतुर्थ में भी तुला लग्न में शनि हो तो भी वह कुछ कम बलवान् योग बनाएगा। उस स्थिति में वह षष्ठ, दशम व लग्न को पूर्ण दृष्टि देखेगा तथा श्रेष्ठ फल देगा।

इसके अतिरिक्त ये मंगल शनि केन्द्रेश होकर तथा त्रिकोणेश होकर लग्न, द्वितीय, नवम, एकादश आदि स्थानों में योगप्रद होंगे।

इसी बात को दृष्टि में रखकर तुला लग्न वालों के लिए शनि को योगप्रद माना गया है–

तुलालग्ने तु जातस्य शनिर्योगप्रदो भवेत्।
तृतीयषष्ठनाथोऽपि गुरुर्योगप्रदो भवेत्॥

(भावार्थ रत्नाकर)

इस श्लोक से हमारी पूर्वोक्त यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि तृतीय, षष्ठ, एकादश स्थानों के अधिपति यदि शुभ ग्रह हों तो भी वे अशुभ फल नहीं देते हैं। देखिए, इसी पाराशरी सिद्धान्त की व्याख्या के आधार पर तुला लग्न में गुरु को तृतीय षष्ठेश होने पर भी योगप्रद माना है। यदि वहाँ त्रिषडायेश शुभ ग्रह स्वक्षेत्री हों तो क्या कहना? यह तो मणि-कांचन योग बनेगा। इस विषय को समझने के लिए यहाँ एक प्रसिद्ध राजनेता की कुण्डली दी जा रही है–

यहाँ केन्द्रेश व त्रिकोणेश शनि लग्न में बैठकर पूर्ण योगप्रद है।

अतः इस कारिका में 'कुज' शब्द पापी केन्द्रेश का और 'कर्म' शब्द सारे केन्द्र स्थानों का उपलक्षण है। इस विचार की पुष्टि पं. वेताल शास्त्री जी के निम्नांकित कथन से भी होती है–

'...कुजपदं पापमात्रोपलक्षणं कर्मपदं च केन्द्रमात्रोपलक्षणम्। अन्यथा
कर्कलग्ने एव कुजस्य शुभत्वमिति कथनेनैवार्थसिद्धेः॥

(लघुपाराशरी., संस्कृत टीका)

यदि ग्रन्थकार का यह आशय न होता तो केवल इतना कहने से ही काम चल जाता कि कर्क लग्न वालों के लिए मंगल शुभ होता है। अतः निश्चित हो जाता है कि केन्द्र-त्रिकोणेश योग परम शुभ हैं। केवल केन्द्रेश होने से ही पाप ग्रह शुभ व शुभ ग्रह पाप फल नहीं देते हैं। अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए हम पाठकों को याद दिलाना चाहते हैं कि लग्न को त्रिकोणत्व व केन्द्रत्व साथ ही प्राप्त होता है।

यदि लग्न में ही लग्नेश स्वक्षेत्री हो, विशेषतया कर्क लग्न में चन्द्रमा, तो वह परम शुभ माना जाएगा। इसके पीछे भी यही सिद्धान्त काम कर रहा है कि केन्द्र त्रिकोणेश योग परम शुभ है। जवाहर लाल नेहरू की कुण्डली में कर्क लग्न में चन्द्रमा परम शुभ है।

अब इस सिद्धान्त की कुछ और व्यापकता प्रदर्शित करते हैं—

ज्योतिष ग्रन्थों में पंच महापुरुष योगों का उल्लेख है। केन्द्र में अपनी मूलत्रिकोण उच्चराशि या स्वराशि में यदि मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि स्थित हों तो क्रमशः रुचक, भद्रक, हंसक, मालव्य और शश योग चबनते हैं।

मेष लग्न में मंगल लग्नस्थ हो तो पाराशर सिद्धान्त से शुभ होकर केन्द्रेश व त्रिकोण होकर लग्नगत होने पर शुभ फल देगा।

इसी प्रकार शेष ग्रहों का भी उक्त प्रकार से भाव सम्बन्ध जानकर ही योग बताए हैं। इनसे लघुपाराशरी के सिद्धान्तों की व्यापकता, अकाट्यता और वैज्ञानिकता सिद्ध होती है।

कन्या लग्न में बुध लग्नस्थ होकर भद्रक योग बनाता है। दूसरी राशि दशम पड़ने के कारण यह सम है तथा लग्नेश होने के कारण परम शुभ है। यदि लग्न भी केवल केन्द्र हो तो बुध निरर्थक ही होगा। लेकिन ऐसा नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि केन्द्रेश सम होते हैं, इसमें केन्द्र से लग्न का ग्रहण नहीं है।

हमारे विचार से लग्नेश यदि अन्यत्र केन्द्र या त्रिकोण में भी बैठे तब भी अच्छा राजयोग बनता है।

पाठकों को यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि लघु पाराशरी के ये 3-4 श्लोक कितने सूक्ष्मदर्शी एवं रत्नतुल्य हैं। इनका प्रभाव ज्योतिष में आपको बहुत गहरा और व्यापक मिलेगा।

राहु-केतु का शुभाशुभ निर्णय :

यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेशसंयुतौ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ।। 13।।

राहु व केतु जिस भाव में स्थित हों अथवा जिस भावेश के साथ बैठे हों, उन्हीं से सम्बन्धित फल बलवान् होने पर देते हैं।

राहु व केतु को किसी भी राशि का स्वतन्त्र अधिपति नहीं माना गया है। अतः यहाँ तक प्रतिपादित भावेश सम्बन्धी नियमों से राहु व केतु का शुभाशुभत्व निर्णीत नहीं हो सकता है।

इसी कारण इसके विषय में इस कारिका की रचना की गई है।

(1) राहु व केतु जिस भाव में बैठे हों उसी भाव को पहले पूर्वोक्त नियमों के आधार पर जान लें कि वह भाव शुभ है या अशुभ। तदनुसार ही राहु व केतु का फल होगा। यदि शुभ भाव में बैठे हों तो शुभ फल देंगे। यदि अशुभ भाव में बैठें तो अशुभ फल देंगे।

अतः ध्यान रखना चाहिए कि द्वितीय, द्वादश या केन्द्र (4, 7, 10) में राहु-केतु सम होंगे। त्रिकोण व लग्न में शुभ होंगे। अष्टम भाव में अति पापी होंगे। त्रिषडाय में पापी रहेंगे। यह फल भावानुसारी हुआ।

(2) ये दोनों अपने साथ स्थित ग्रह के फल को भी देते हैं। अर्थात् राहु या केतु यदि किसी अन्य ग्रह के साथ हों तो पहले देखिए कि वह ग्रह शुभाशुभ कैसे भाव का स्वामी है। जैसा फल राहु-केतु के साथी ग्रह का होगा वैसा ही फल इनका भी होगा।

अतः ध्यान रखें, राहु-केतु केन्द्रेश के साथ हों तो सम, त्रिकोणेश के साथ हों तो शुभ और त्रिषडायेशादि के साथ हों तो पापी या शुभ यथावसर होते हैं।

निष्कर्ष यह है कि राहु व केतु छाया ग्रह हैं। इनका अपना भौतिक स्वरूप नहीं है। अतः ये जिसके साथ बैठेंगे तदनुसार ही बन जाएंगे। यदि ये सूर्य के साथ हैं तो सूर्यवत्, चन्द्र के साथ हैं तो चन्द्रवत्, मंगल के साथ हैं तो मंगलवत् इत्यादि प्रकार से फल देंगे।

दूसरें शब्दों में, यह कह सकते हैं कि जिस भावेश के साथ बैठेंगे, ये उसी भावेश के फल को दूना कर देंगे। यदि दशमेश के साथ राहु बैठे तो दशमेश ग्रह तत्सम्बन्धी फल को द्विगुणित प्रकार से देगा क्योंकि उसकी फल प्रदान शक्ति में राहु की भी शक्ति सम्मिलित होगी।

इसी कारण कहा गया है कि राहु या केतु, केन्द्र या त्रिकोण में, केन्द्रेश व त्रिकोणेश के साथ बैठें तो योगकारक होंगे।

अतः पंचम या नवम स्थान में राहु-केतु केन्द्रेश व त्रिकोणेश के साथ बैठ कर परम योगकारक होंगे। जैसे कर्क लग्न में पंचम या दशम में मंगल के साथ राहु या केतु बैठ जाएं तो श्रेष्ठ फल देंगे।

इसी प्रकार लग्न के साथ राहु बैठे तो भी योगकारक होगा। इसी प्रकार अन्यत्र समझ लेना चाहिए कि राहु-केतु कारक ग्रह के साथ हों तो कारक, यदि मारक के साथ हों तो मारक हो जाते हैं। अष्टम में अष्टमेश या किसी अन्य पाप ग्रह के साथ बैठे राहु-केतु इसी लिए परम अशुभ दुर्मृत्यु देते हैं (बुरी मौत मारते हैं)।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अकेले राहु व केतु अशुभ न होकर सम होते हैं।

राहु-केतु के अशुभ फल को समझने के लिए यहाँ पाकिस्तान के एकमात्र निर्वाचित राष्ट्राध्यक्ष जुल्फिकार अली भुट्टो की कुण्डली दी जा रही है-

जन्म तिथि-5-1-1928, जन्मदशा शेष-4-7-7 वर्षादि।

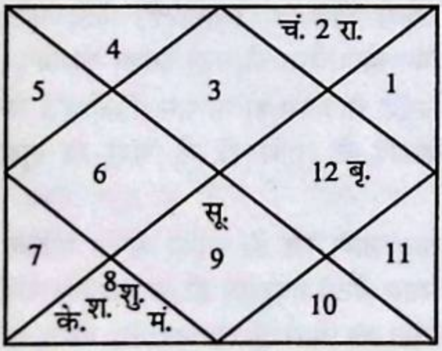

शनि महादशा अगस्त 65 से अगस्त 84 तक रही थी। केतु पर अष्टमेश, द्वादशेश, षष्ठेश, एकादशेश का स्पष्ट प्रभाव है।

राहु भी द्वादशेश से दृष्ट होकर चन्द्रमा से युक्त है। अतः राहु व केतु दोनों पर ही अष्टमेश, द्वादशेश, षष्ठेश आदि का बहुत बुरा प्रभाव है। शनि (अष्टमेश) की महादशा व राहु की अन्तर्दशा में इन्हें प्रबल जन विरोध व अन्तर्राष्ट्रीय दबाव होते हुए भी जिया सरकार ने फांसी पर चढ़ा दिया था।

अतः राहु व केतु ने अपने साथी भावेशों कें अनुसार फल दिया है। शनि में केत्वन्तर जून 72 तक था। इस समय भी भारत के हाथों प्रबल पराजय, अन्तर्राष्ट्रीय बदनामी इन्हें मिली थी।

अत: निष्कर्ष रूप में समझ लेना चाहिए कि राहु-केतु यदि केन्द्र या त्रिकोण या लग्न में केन्द्रश, त्रिकोणेश या लग्नेश से युक्त हों तो बहुत शुभफल देते हैं। त्रिकोण में बैठकर राहु व केतु शुभ होते हैं। तथा धन देते हैं। इस विषय में अगली कुण्डली देंखे।

जन्म 6-12-1932 समय रात्रि-3-15 A.M.

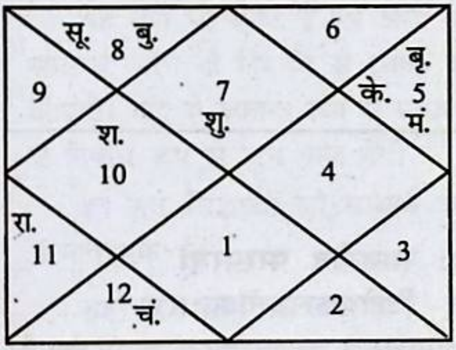

ये महोदय एक विदेशी कम्पनी में बहुत उच्च पद पर कार्यरत हैं। इनकी पत्नी भी अच्छा व्यापार करती है। उत्तम आर्थिक स्थिति वाले हैं। देखिए, पंचम राहु शुभ है, केन्द्रेश की राशि में त्रिकोण में होकर शनि का प्रभाव लिए है। अत: धनप्रद है।

केतु पर सप्तमेश धनेश (पत्नी) मंगल का प्रभाव, शुभ त्रिषष्ठेश गुरु का प्रभाव है, अत: केतु उनकी आय को खूब बढ़ाता है।

हमारे मत से पाराशरी का सिद्धान्त बहुत अच्छा है कि राहु-केतु केन्द्र त्रिकोण में या केन्द्र-त्रिकोणेश से युक्त हों तो परम शुभ होते हैं। उत्तरकालामृत ने इस विषय में थोड़ी असहमति दिखाई है जो हमें कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं लगती।

॥ इत्युडुदायप्रदीपे लघुपाराशर्यां पं. सुरेशमिश्रकृतायां विद्याधरी- हिन्दीव्याख्यायां फलनिर्णयाध्ययो द्वितीय:॥

3 योगफलाध्याय:

ग्रहों के शुभफलदायक योग :

केन्द्रत्रिंकोणपतयः सम्बन्धेन परस्परम्।
इतरैरप्रसक्ताश्चेद् विशेषफलदायकाः॥

केन्द्र व त्रिकोंण स्थानों के अधिपतियों का सम्बन्ध होना ही योग है। योग अर्थात् परस्पर सम्बन्ध अर्थात् शुभ फलों की अधिकता। यदि परस्पर सम्बन्धी केन्द्रेश व त्रिकोणेश किसी अन्य भावेश के साथ सम्बन्ध न करते हों तो विशेष रूप से अधिक शुभ फल देते हैं।

फलित ज्योतिष का यह आधारभूत नियम है कि जिस कुण्डली में 1, 5, 9 स्थानों के स्वामियों के साथ 4, 7, 10 स्थानों के स्वामी ग्रह सम्बन्ध रख रहे हों तो वह व्यक्ति भाग्यशाली होता है।

सामान्यतः लग्न, लग्नेश, चन्द्रराशीश, चन्द्र, सूर्य व सूर्यराशीश यदि बली हों तो शुभफल की मात्रा बढ़ जाएगी।

साथ ही यदि उक्त स्थानों में ग्रहों में से कुछ अथवा सभी केन्द्रेश व त्रिकोणेशों के साथ सम्बन्ध करते हों तो आयु, पदवी, धन, भाग्य व सुख की बढ़ोतरी होती है।

केन्द्रेश व त्रिकोणेश का परस्पर सम्बन्ध या दोनों का एक ही होना निश्चय से राजयोग की आधार भूमि बनाता है।

प्रसिद्ध राजयोगों में यदि ध्यान से देखा जाए तो केन्द्रेशों व त्रिकोणेशों का आपसी सम्बन्ध बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1,

5, 9 स्थानों की बलवत्ता शुभ फल देती है और इनकी निर्बलता अशुभ फल देती है।

आज तक सहस्राधिक कुण्डलियों का विचार करने पर हम अपने अनुभव से पाते हैं कि केन्द्रेश त्रिकोणेशों का लग्नेश व चन्द्रराशीश से सम्बन्ध निश्चय से व्यक्ति को भाग्यशाली बनाता है।

यह बात भी स्पष्ट है कि अन्य अशुभ भावेशों के साथ भी यदि ये सम्बन्ध करेंगे तो निश्चय से इनकी शुभ फल देने की शक्ति में कमी आएगी। यदि ये स्वतन्त्र रूप से परग्रहसंकर से रहित होंगे तो निःसंदिग्ध व निर्बाध रूप से शुभ फल देंगे।

इन सारे सिद्धान्तों को समझने के लिए सम्बन्ध शब्द की व्याख्या परमावश्यक है।

ग्रहों का चतुर्विध सम्बन्ध

(1) **सहावस्थान**–जब दो ग्रह एक स्थान में हों तो उनमें सहावस्थान अर्थात् 'एकत्र स्थित होना' सम्बन्ध कहलाता है।

(2) **दृष्टि सम्बन्ध**–जब कोई दो ग्रह परस्पर एक-दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखते हों तो उनमें दृष्टि सम्बन्ध माना जाता है। यहाँ हम यह बता देना चाहते हैं कि पाराशर मत में पूर्ण दृष्टि ही फल देने में सक्षम है। शेष दृष्टियां तो केवल मन को समझाने मात्र का ही साधन हैं। मूल रूप से पराशर व जैमिनी दोनों ने ही पूर्ण दृष्टि को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। यह बात सूक्ष्म तारतम्य पर आधारित है।

(3) **क्षेत्र सम्बन्ध**–जब दो ग्रहों की स्थिति इस प्रकार से हो कि एक की राशि में दूसरा हो तथा दूसरे की राशि में पहला हो तो यह क्षेत्र सम्बन्ध बनाता है।

इसे स्थान विनियम सम्बन्ध भी कहते हैं। उदाहरणार्थ सूर्य यदि मेष राशि में स्थित हो और मंगल सिंह राशि में हो तो यह सम्बन्ध माना जाएगा।

अनुभव बताता है कि यह क्षेत्र सम्बन्ध ही सबसे बलवान् होता है। इस बात की पुष्टि हम अगली पंक्तियों में सोदाहरण करेंगे।

(4) **स्थान दृष्टि सम्बन्ध**–जब किसी को, उसकी अधिष्ठित राशि का स्वामी पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो यह स्थान दृष्टि सम्बन्ध बनता है।

उदाहरणार्थ वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य को मंगल (वृश्चिक का स्वामी) पूर्ण दृष्टि से देखे तो सूर्य व मंगल में स्थान दृष्टि सम्बन्ध माना जाएगा।

आप देखेंगे कि निम्नलिखित फलित सिद्धान्त के मूल में यही पाराशरी सिद्धान्त काम कर रहा है–

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात् तस्य तस्याभिवृद्धिः॥

जिस स्थान में उसका स्वामी बैठा हो या उसका स्वामी उसे पूर्ण दृष्टि से देखता हो अथवा जिसे सौम्य ग्रह (लग्न त्रिकोणेशादि) देखते हों तो उस भाव सम्बन्धी फल की वृद्धि होती है।

इन चारों प्रकार के सम्बन्धों में क्षेत्र सम्बन्ध सर्वश्रेष्ठ होता है। इससे कम श्रेष्ठ दृष्टि सम्बन्ध है। उससे कम श्रेष्ठ स्थान-दृष्टि-सम्बन्ध है और सबसे निर्बल सहावस्थान सम्बन्ध है।

यदि किसी कुण्डली में फल की गवेषणा करते समय इन सम्बन्धों की स्थिति दिखे तो बहुत अच्छी बात है। अर्थात् अविचारित रमणीय है।

यदि कहीं ये सम्बन्ध स्फुट न हों तो निराश होकर उस व्यक्ति को बिल्कुल भाग्यहीन घोषित नहीं करना चाहिए। हमारा विचार है कि परस्पर केन्द्र या त्रिकोणों में स्थित ग्रह भी कारक अर्थात् फल देने वाले होते हैं। कहा गया है–

स्वर्क्षतुंगत्रिकोणस्था मित्रर्क्षांशगता अपि।
यावन्तः आश्रिताः केन्द्रे ते सर्वेऽन्योऽन्यकारकाः॥

जो ग्रह अपनी राशि, अपने उच्च, अपने मित्र की राशि में या इनके नवांश में हों वे सभी ग्रह कारक होते हैं।

जो ग्रह परस्पर केन्द्र व त्रिकोण में हों वे कारक होते हैं। अतः इस पद्धति से शुभ फलादेश करना चाहिए।

निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि केन्द्र स्थानों के स्वामी व त्रिकोण स्थानों के स्वामी यदि परस्पर सम्बन्धी हों तो वे योगकारक अर्थात् श्रेष्ठ फल देने वाले होते हैं।

कारिका की दूसरी पंक्ति में एक और विशेष बात कही गई है कि ये केन्द्रेश व त्रिकोणेश आपस में सम्बन्धी होने से ही विशेष शुभ फल नहीं करते हैं, अपितु अन्य भावेशों से सम्बन्ध न करें तथा आपस में सम्बन्धी हों तो वे विशेष फलदायक सिद्ध होंगे। इस **'इतरैरप्रसक्ताश्चेद्'** शब्द का क्या रहस्य है?

पहले बता चुके हैं कि लग्नेश परम शुभ है और अष्टमेश परम अशुभ है।

लग्न से द्वितीय, द्वादश स्थानों के स्वामी सम हैं।

केन्द्रेश नित्य सम है और त्रिकोणेश नित्य शुभ है।

त्रिषडायेश पाप हैं तो पापी और शुभ हैं तो शुभ फल देने की सामर्थ्य रखते हैं।

अब यह बात कहना सरल है कि केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध तभी विशेष फलदायक है जब वे त्रिषडायेश या अष्टमेश से सम्बन्ध न रखते हों।

यदि ये केन्द्रेश व त्रिकोणेश इन पूर्वोक्त अशुभ भावेशों से भी साथ-साथ सम्बन्ध रखते हों तो भी इनका सारा फल नष्ट नहीं होता है। केवल शुभ फल में ह्रास अवश्यम्भावी होगा।

यदि केन्द्रेशों व त्रिकोणेशों का सम्बन्ध केन्द्र व त्रिकोण स्थान में बने तो फिर क्या कहना? तब इनकी श्रेष्ठता में कोई सन्देह नहीं है।

यदि इनका सम्बन्ध 3, 6, 11 में अथवा 2, 12 में भी बने तो भी शुभ फल देगा, ऐसा हमारा अनुभव है।

अत: केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध केन्द्र या त्रिकोण में ही बने तो अत्युत्तम, यदि अन्य सम स्थानों में बने तो उत्तम, शुभ त्रिषडाय में बने तो मध्यम और अष्टम व पाप त्रिषडाय में बने तो अधम होगा, ऐसे स्वारस्य की कल्पना करना संगत है।

यद्यपि पाराशरी के व्याख्याकारों ने कहा है कि ये सम्बन्ध केन्द्र व त्रिकोण में होने पर ही श्रेष्ठ हैं तथापि व्यवहार में ऐकान्तिक रूप से इसकी सदा उपलब्धि नहीं होती। अन्य भावगत होने पर इसमें आनुपातिक ह्रास आ सकता है।

इस बात को पुष्ट करने के लिए जवाहरलाल नेहरू की कुण्डली को देखिए–

जन्म : 14 नवम्बर, 1889, समयः रात्रि 15–35 9. S.T.

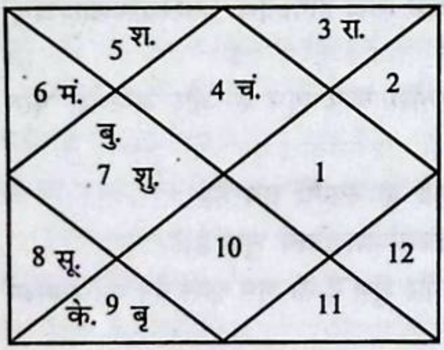

चन्द्रमा, बृहस्पति व मंगल त्रिकोणेश हैं और चन्द्रमा, शुक्र, शनि, मंगल केन्द्रेश हैं। कर्क लग्न में मंगल को श्रेष्ठ कारक माना गया है। लेकिन केन्द्रेश व त्रिकोणेश मंगल तृतीय में है जहाँ कन्या शुभ राशि है। अतः राजयोग (दशमेश+पंचमेश का मंगलकृत फल) भंग नहीं हुआ। क्या आप समझते हैं कि पं. नेहरू के राजयोग में कमी थी।

मंगल व नवमेश गुरु का केन्द्र सम्बन्ध भी छठे भाव में है।

सप्तमेश शनि पर नवम दृष्टिकारक गुरु षष्ठगत है। अतः सभी सम्बन्ध केन्द्र व त्रिकोणों से पृथक् स्थानों में बैठ रहे हैं, तब तो राजयोग नहीं होना चाहिए? अतः कहना पड़ता है कि केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध कुण्डली में कहीं भी हो, तो वह सत्फलदायक होगा।

'सम्बन्ध' शब्द के रहस्य को समझने के लिए श्रीमती इन्दिरा गांधी की कुण्डली को देखें:

जन्म : 19 नवम्बर, 1917, प्रयाग।

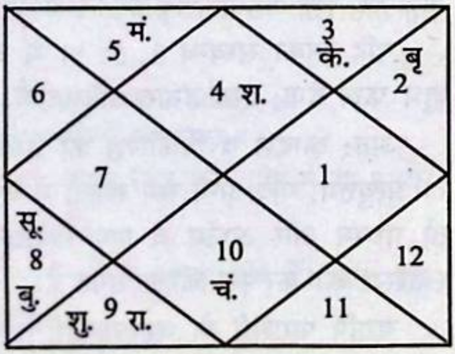

केन्द्रेश व त्रिकोणेश चन्द्रमा, सप्तमेश शनि से क्षेत्र सम्बन्ध रखता है। साथ ही दृष्टि सम्बन्ध भी रख रहा है। यद्यपि शनि अष्टमेश के दोष से युक्त है तथापि योगकारक है।

यद्यपि शनि को मारकत्व प्राप्त है तथापि वह राजयोग कारक भी है।

बृहस्पति व शुक्र का क्षेत्र सम्बन्ध भी अच्छा है जबकि वह त्रिषडाय वर्ग के गृहों में बन रहा है। केन्द्रेश शुक्र व त्रिकोणेश बृहस्पति की दूसरी राशि त्रिषडाय वर्ग में पड़ती है तथापि हमने पहले भी कहा है कि त्रिषडायेश शुभ ग्रह हों तो वे शुभ फल देंगे।

दशमेश पंचमेश मंगल का भी क्षेत्र सम्बन्ध बहुत ही दर्शनीय है और मंगल की राशि में स्थित सूर्य को मंगल पूर्ण दृष्टि से भी देख रहा है। इनके राजयोग, धनयोग, भाग्ययोग में भला क्या सन्देह है। अतः केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध कहीं भी हो और वे स्वयं अशुभ भावेश भी हों तो भी शुभ फल निःसंदेह मिलता है। इसी विषय को अगली कारिका में स्पष्ट किया जा रहा है।

दोषयुक्त केन्द्रत्रिकोणेशों का फल निर्णय :

केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्।
सम्बन्धमात्राद्बलिनौ भवेतां योगकारकौ।।15।।

यदि पूर्वोक्त प्रकार से ये केन्द्रेश और त्रिकोणेश कुछ दोष से युक्त भी हों, किन्तु परस्पर सम्बन्ध रखते हों तो भी अवश्य ही योगकारक होंगे।

सरल नियम यह है कि केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध ही योगकारक है। इस सार्वत्रिक नियम में शंका हो सकती है कि यदि ये सम्बन्धी होकर भी केन्द्रेश व त्रिकोणेश दुष्ट हों तो क्या ये शुभ फल देने में समर्थ हो पाएंगे? इस विषय को समझने के लिए पहले दोष समझना आवश्यक है।

सामान्यतः नीच राशि, अस्तंगत, पापकर्त्तरी, शत्रुराशि, शत्रुनवांश, क्रूर षष्ट्यंश, बाल, वृद्ध, पराजित होना आदि ग्रहों के दोष हैं। विस्तृत विवेचन हमारी अन्य पुस्तक **भावमंजरी** प्रणवाख्या में देंखे।

पाराशर मत में भावेशत्व के आधार पर भी दोष माने गए हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, जो ग्रह अशुभ भावों का स्वामी हो वह दुष्ट होता है।

अब यह देखना है कि केन्द्रेश त्रिकोणेश के क्या दोष हो सकते हैं।

केन्द्रेश के दोषः

(1) स्वयं शुभ ग्रह होना।

(2) दूसरी राशि 3, 6, 8, 11 स्थानों में पड़ना। या स्वयं इन स्थानों में होना।

(3) 3, 6, 8, 11 स्थानों के स्वामियों से सम्बन्ध करना।

(4) नीचास्त, शत्रुक्षेत्रत्वादि पूर्वोक्त स्थिति में होना।

(5) स्वयं पाप केन्द्रेश होकर 3, 6, 8, 11 स्थानों का भी स्वामी होना।

त्रिकोणश के दोष :

(1) दूसरी राशि 3, 6, 8, 11 में पड़ना। या स्वयं वहाँ होना।

(2) नीचास्त, शत्रुक्षेत्रादि में होना।

हमारे विचार से 3, 6, 8, 11 स्थानों में दूसरी राशि पड़ना उतना बड़ा दोष नहीं है, जितना क़ि स्वयं नीच, अस्त या शत्रुक्षेत्र में होना। केन्द्रेश या त्रिकोणेशों की दूसरी राशियां तो 3, 6, 8, 11 में प्रायः सभी लग्नों में पड़ेंगीं ही। साथ ही 3, 6, 8, 11 स्थानाधिप होने पर भी व्यवहार में देखा गया है कि ये परस्पर सम्बन्धी होकर शुभ फल देते हैं।

अतः नीचास्तंगत होने पर ये सम्बन्धी होकर अल्प मात्रा में शुभ फल देंगे, यह बात सिद्ध है।

इन दोषों में से कोई या कुछ दोष होने पर केन्द्र त्रिकोणेश परस्पर सम्बन्ध करते हों तो भी अवश्य ही वे योगकारक होंगे।

पूर्वोदाहृत श्रीमती गांधी की लग्न कुण्डली में देखिए कि शनि अष्टमेश के महादोष से युक्त है, लेकिन लग्नेश का सम्बन्ध होकर राजयोग करता है। शनि की महादशा में इन्हें निर्बाध राजयोग प्राप्त हुआ।

बृहस्पति वक्री है और योगकारक सिद्ध हुआ। त्रिषडायेश होकर वहीं होने का दोष भी गुरु को है। फिर भी इसका योगकारक होना निःसन्दिग्ध है।

अतः दोषयुक्त केन्द्रेश व त्रिकोणेश भी योगकारक होते हैं। उनके बलाबल का विचार सम्बन्ध के आधार पर होता है।

ये परस्पर सम्बन्धी होने भर से ही बली हो जाते हैं। शेष पूर्वोक्त दोष इनकी फल देने की शक्ति को कुछ घटा तो सकते हैं, परन्तु उसे पूर्ण कुण्ठित नहीं कर सकते हैं।

पीछे फल निर्णयाध्याय की अष्टम कारिका से सम्बन्धित व्याख्या भाग में वृश्चिक लग्न वाली कुण्डली दी गई है।

वहाँ पर केन्द्र-त्रिकोण का स्वामी मंगल बारहवें स्थान में केन्द्रेश सूर्य के साथ है और अष्टमेश से युक्त है तथापि योगकारक है। शुक्र व मंगल का क्षेत्र सम्बन्ध भी द्रष्टव्य है।

नवमेश चन्द्रमा का लग्नेश मंगल, दशमेश सूर्य से दृष्टि सम्बन्ध है। यद्यपि ये ग्रह दोषयुक्त हैं तथापि इनके राजयोग में सन्देह नहीं है, क्योंकि ये मेरे परिचित हैं।

कारिका में प्रयुक्त 'सम्बन्धमात्राद्बलिनौ' से भी यही आशय है कि इनका परस्पर सम्बन्धी होना ही बलवान् होने की पहचान है। पं. विनायक शास्त्री जी ने 'स्वयं' शब्द के परिप्रेक्ष्य में इन्हें नीचास्तत्वादि में ही दोषयुक्त माना है। त्रिषडायेश होने पर भी ये दोषी नहीं हैं।

यह बात उदाहरणों से भी सिद्ध की जा चुकी है।

योगकारकत्व का अधिक स्पष्टीकरण –

निवसेतां व्यत्ययेन तावुभौ धर्मकर्मणोः।
एकत्रान्यतरो वापि वसेच्चेद्योगकारकौ॥ 16॥

कुण्डली में नवमेश व दशमेश अपना स्थान बदलकर स्थित हों, यथा नवमेश दशम में व दशमेश नवम में हो तो यह एक राजयोग है।

यदि दशमेश व नवमेश दोनों दशम में या नवम में स्थित हों तो यह भी एक राजयोग है।

यदि केवल दशमेश नवम में हो या केवल नवमेश दशम में हो तो भी राजयोग है।

ये राजयोग उत्तरोत्तर अल्पबली हैं।

यह श्लोक बहुत गहरा अर्थ रखता है। विद्वानों ने इसका अर्थ निर्धारण कई प्रकार से किया है। पं. वेताल शास्त्री जी ने इस कारिका में प्रयुक्त धर्म व कर्म शब्द को क्रमशः त्रिकोण व केन्द्र के वाचक माना है।

नवम स्थान सभी त्रिकोणों (5, 9) में बली है और दशम सभी केन्द्रों (4, 7, 10) में बली है। अतः ये योग यदि दशम व नवम स्थान से सम्बन्धित हों तो सबसे अधिक बली होंगे। अन्य त्रिकोण केन्द्रों के आधार पर बनें तो क्रमशः इनका प्रभाव क्षीणतर होता जाएगा।

सुश्लोक शतक, उद्योत टीका, सज्जन रंजनी टीका वेताल शास्त्री जी की प्रकाश टीका व पं. रामयत्न जी के फलित विकास में तत्सम्बन्धी प्रकरण को यदि देखें तो इस 'धर्म कर्म' शब्द ने बड़ा बखेड़ा खड़ा किया है। हमारा उद्देश्य पाठकों को शास्त्रार्थ में फंसाना नहीं है। हम चाहते हैं कि वास्तविक व सन्तुलित अर्थ प्रकट हो जाए। एतदर्थ हम यहाँ अपने मस्तिष्क से निष्कर्ष निकाल कर प्रस्तुत कर रहे हैं।

(1) केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध राजयोगकारक होता है, यह बात अब तक आपके समक्ष स्पष्ट हो चुकी है। यदि यह योग केन्द्र या त्रिकोण में बने तो सर्वोत्तम और यदि अन्यत्र बने तो भी उत्तम।

(2) उक्त योग की गवेषणा करते समय इस बात का ध्यान रखना भी परमावश्यक है कि पहले चार प्रकार के सम्बन्धों में तारतम्य अर्थात् श्रेष्ठता का क्रमशः उतार बताया गया है।

(3) अब यदि श्रेष्ठ स्थानों में श्रेष्ठ सम्बन्ध बनेगा तो बहुत अच्छा फल मिलेगा। यदि श्रेष्ठ स्थानों में ही कुछ कम श्रेष्ठ सम्बन्ध बनेगा तो स्पष्ट है कि राजयोग की शक्ति पूर्वापेक्षा कम होगी।

(4) इस बात को और स्पष्ट करने के लिए कह सकते हैं कि केन्द्रेश व त्रिकोणेश का योग भी चार सम्बन्धों के आधार पर चार प्रकार होता है। इसका सीधा समीकरण इस प्रकार हो सकता है–

श्रेष्ठ भाव+श्रेष्ठ सम्बन्ध=श्रेष्ठफल।

क्रमशः अल्प श्रेष्ठ भाव+क्रमशः अल्प श्रेष्ठ सम्बन्ध=कम श्रेष्ठ फल।

इनमें भी श्रेष्ठ भाव में कम श्रेष्ठ सम्बन्ध होने पर एवं अल्प श्रेष्ठ भाव में श्रेष्ठ सम्बन्ध होने पर भी तारतम्य की कल्पना आवश्यक व सुशक्य है।

(5) इस स्थिति में कुछ इस प्रकार योग बन सकते हैं–

(क) दशमेश–नवमेश का चतुर्विध सम्बन्ध एवं जिस भाव में ये योग बनें उस भाव की गुणवत्ता के आधार पर तारतम्य की कल्पना करना।

(ख) दशमेश–पंचमेश का सम्बन्ध व पूर्वोक्त प्रकारक तारतम्य।

(ग) दशमेश और लग्नेश का, लग्नेश–नवमेश का, लग्नेश–पंचमेश का, पंचमेश–सप्तमेश का, सप्तमेश– नवमेश का इत्यादि प्रकार से परस्पर संकर व संसृष्टि से सैकड़ों भेद बन जाते हैं।

अब ध्यातव्य यह है कि अब तक जितने भी योग बताए गए हैं वे केन्द्रेश व त्रिकोणेश के परस्पर सम्बन्ध पर आधारित हैं। इस सोलहवीं कारिका में जो योग बताए जा रहे हैं वे केन्द्र व त्रिकोण पर भी आधारित हैं, उनके स्वामियों पर ही नहीं है। अस्तु, केन्द्रेश व त्रिकोणेश व केन्द्र–त्रिकोण का सम्बन्ध इस प्रकार होगा–

नवमेश दशम में हो और दशमेश नवम में हो, यह स्थान व्यत्यय हुआ। अर्थात् दोनों भावेशों में वहीं पर क्षेत्र सम्बन्ध बना। यह सम्बन्ध भी सर्वश्रेष्ठ है और केन्द्र त्रिकोणों में नवम दशम भी सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः सर्वश्रेष्ठ का सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध अवश्य ही सर्वश्रेष्ठ राजयोग बनाएगा।

लेकिन विचारणीय यह है कि केन्द्रेश व त्रिकोणेशों का परस्पर सम्बन्ध होने पर राजयोग का समर्थन तो इस पुस्तक में पहले भी किया जा चुका है, तब पुनरुक्ति है या कोई अन्य रहस्य। इस विषय में हम पं. वेताल शास्त्री के मत का समर्थन करते हैं। हम भी धर्म व कर्म शब्द को यहाँ पर केन्द्र व त्रिकोण का वाचकोपलक्षण ही मानते हैं, अन्यथा इस श्लोक के अर्थ निर्धारण में निस्तार ही नहीं है।

केन्द्रेश व त्रिकोणेश का परस्पर सम्बन्ध श्रेष्ठ राजयोग है, लेकिन केन्द्रेश का त्रिकोण में होना अथवा त्रिकोणेश का केन्द्र में होना भी कुछ कम शक्ति वाला राजयोग है। यही आशय 'व्यत्यय' शब्द का है।

व्यत्यय

(1) केन्द्रेश किसी भी त्रिकोण में त्रिकोणेश के साथ हो। जैसे कर्क लग्न में चतुर्थेश शुक्र नवम त्रिकोण में गुरु के साथ बैठे।

(2) केन्द्रेश किसी त्रिकोण में हो और त्रिकोणेश किसी भी केन्द्र में हो। जैसे कर्क लग्न में ही दशमेश मंगल पंचम हो और सप्तमेश शनि भी पंचम में हो।

(3) केन्द्रेश किसी भी त्रिकोण में हो और त्रिकोणेश किसी अन्य त्रिकोण में हो। जैसे कर्क लग्न में मंगल नवम में हो और नवमेश गुरु पंचम में हो।

(4) केन्द्रेश किसी भी केन्द्र में हो और त्रिकोणेश भी किसी केन्द्र में आ जाए। जैसे कर्क लग्न में नवमेश गुरु लग्न या सप्तम में हो और दशमेश मंगल चतुर्थादि किसी भी केन्द्र में हो। यह स्थिति 'एकत्र' शब्द से आती है। अर्थात् केन्द्रेश व त्रिकोणेश दोनों केन्द्र में हों या दोनों त्रिकोण में हों। इसी एकत्री भाव की कुछ और स्थितियां इस प्रकार होंगी।

(5) केन्द्रेश अपने केन्द्र में हो, जैसे कर्क लग्न में चन्द्रमा और नवम त्रिकोणेश बृहस्पति भी लग्न में स्थित हो। तब केन्द्रेश व त्रिकोणेश दोनों ही एक प्रकार से त्रिकोण में भी होंगे और केन्द्र में भी। यही कारण है कि यह एक बहुत श्रेष्ठ राजयोग माना जाता है।

(6) केन्द्रेश किसी भी केन्द्र में हो और त्रिकोणेश भी कहीं भी केन्द्र में हो।

(7) कोई केन्द्रेश व कोई त्रिकोणेश दोनों ही कहीं भी केन्द्र या त्रिकोण में एकत्रित हों या अलग-अलग हों तो भी राजयोग कारक होंगे।

अन्यतर

अब कारिका के 'अन्यतर' शब्द को लें। इसका शब्दार्थ होता है–दो में से कोई एक। अतः ये स्थितियां बनेंगीं–

(1) केन्द्रेश कहीं भी त्रिकोण में हों और त्रिकोणेश किसी अन्य भाव में हों। जैसे कर्क लग्न में चतुर्थेश शुक्र नवम में हो और नवमेश गुरु द्वितीय, द्वादश आदि भावों में हो।

(2) केवल त्रिकोणेश केन्द्र में हों और केन्द्रेश कहीं अन्यत्र हों।

(3) केन्द्रेश किसी केन्द्र में हों और त्रिकोणेश किसी त्रिकोण में ही हों तो भी राजयोग बनेंगे।

इस प्रकार इस कारिका से **व्यत्यय** के आधार पर, **एकत्रत्व** के आधार पर और **'अन्यतरत्व'** के आधार पर राजयोग बनाए गए हैं। सम्बन्ध के आधार पर राजयोग पिछली कारिकाओं में बताए जा चुके हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पाराशर सिद्धान्त में केन्द्र व त्रिकोण भाव ही मनुष्य को सब कुछ देने वाले हैं। केन्द्रेशों व त्रिकोणेशों के परस्पर सम्बन्ध से, परस्पर व्यत्यय (विनिमय) से, एकत्रत्व से व अन्यतरत्व से राजयोग निर्णीत हुआ करते हैं।

मुहम्मद अली जिन्ना साहब की कुण्डली को जरा देखिए–

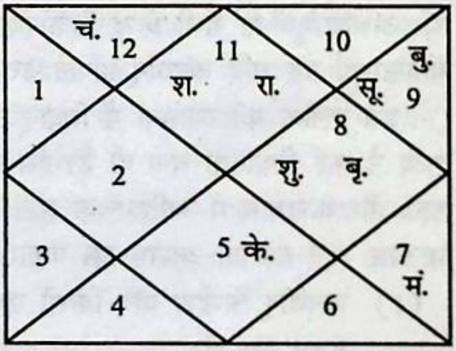

(1) नवमेश शुक्र दशम में है और दशमेश मंगल नवम में है। इन्होंने स्थान व्यत्यय करके क्षेत्र सम्बन्ध बनाया है।

(2) लग्न में लग्नेश योगकारक है।

(3) सम भाव द्वितीयेश गुरु दशम में बैठकर साहचर्य से योग कारक है, लेकिन स्थानान्तरानुगुण्य से कारक न होकर सम है।

इतना सब कुछ होते हुए भी पं. नेहरू की अपेक्षा इनका राजयोग कम शक्तिशाली रहा। इसका कारण लघु–पाराशरी के श्लोक सं. 14 के 'इतरैरप्रसक्ताः' शब्द में छिपा है। दशमेश मंगल पाप त्रिषडायेश होकर कुछ कम शुभ है। गुरु तो भावेशत्व के आधार पर शुभ नहीं है। वैसे भी दशमस्थ गुरु को कुछ कम फलदायक माना जाता है।

इसके विपरीत पं. नेहरू की कुण्डली में लग्नस्थ चन्द्रमा श्रेष्ठ है। केन्द्रेश शुक्र केन्द्र में है, केन्द्र त्रिकोणेशों का सम्बन्ध नहीं है, तब भी राज्य कार्य इन्होंने लम्बे समय तक सम्भाला था।

अस्तु, आशय यही है कि योगकारक ग्रहों के स्वबल का भी प्रभाव पड़ता है और राजयोग का तात्पर्य केवल राजा बनने से ही नहीं है, अपितु राजपद पर होना, राजमान्य होना, धन व भाग्य की बहुतायत होना भी राजयोग की सीमा में है।

सर्वोत्तम राजयोग–

त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये सम्बन्धी येन केनचित्।
केन्द्रनाथस्य बलिनो भवेद्यदि सुयोगकृत्॥

किसी भी त्रिकोण का बलवान् केन्द्र स्थानेश अर्थात् दशमेश से सम्बन्ध हो तो उत्तम योग होता है।

अथवा किसी भी केन्द्र स्थान के स्वामी ग्रह का सम्बन्ध बलवान् त्रिकोणेश अर्थात् नवमेश से सम्बन्ध हो तो भी राजयोग होता है।

अथवा पूर्वोक्त सभी केन्द्र त्रिकोणेश सम्बन्धों से उत्पन्न राजयोगों में योगकारक ग्रह यदि बलवान् हों तो उत्तम योग होता है।

इस श्लोक की व्याख्या में विद्वान् टीकाकारों में मतभेद है। **बलिनो** शब्द ने कई स्थितियां बना दी हैं। इस शब्द को केन्द्रनाथ का विशेषण मानें और केन्द्रनाथ में जातिवाचक संज्ञा के आधार पर एक वचन सम्भव मानकर अर्थ करें तो आशय इस प्रकार होगा–

(1) बलवान् केन्द्रेश यदि किसी एक त्रिकोणेश से सम्बन्ध करे तो उत्तम योग है।

- यदि साथ ही दूसरे त्रिकोणेश भी सम्बन्ध करें तो अति सुन्दर अर्थात् अविचारित रमणीय यानि बिन मांगी मुराद मिलने वाली स्थिति बन जाएगी।

(2) इस प्रसंग में बलवान् शब्द का तात्पर्य भी भिन्न-भिन्न हो सकता है।

(क) भावेशत्व की दृष्टि से बली।

(ख) भाव की दृष्टि से बली।

(ग) अपनी स्थिति से बली।

(क) यदि भावेशत्व के आधार पर केन्द्रेश की बलवत्ता का निर्णय करें तो सभी केन्द्रों में दशम स्थान बलवान् है, अतः बलवान् केन्द्रेश से तात्पर्य केवल दशमेश से होगा।

(ख) यदि भाव के आधार पर बलवत्ता का निर्णय करें तो इसका आशय यह स्थिर होगा कि दशमेश या अन्य केन्द्रेश केन्द्र या त्रिकोण में ही यह योग बनाएगा।

(ग) अपनी स्थिति से यदि बली माना जाए तो योगकारक केन्द्रेश की अपनी राशि, मूल त्रिकोण, उच्च राशि या इन नवांशों में स्थिति होने पर उक्त योग बनेगा।

(3) यदि '**बलिनः**' शब्द का सम्बन्ध 'त्रिकोणाधिपयोः' के साथ मान कर चलें तो आशय इस प्रकार स्थिर होगा–'**त्रिकोणाधिपयोः**' अर्थात् दोनों त्रिकोणेशों के 'मध्ये' अर्थात् बीच में जो भी '**बलिनः**' अर्थात् बलवान् हो। इस बलवान् त्रिकोणेश (नवमेश या स्वोच्चादिगत कोई त्रिकोणेश) का सम्बन्ध यदि किसी 'केन्द्रनाथस्य' अर्थात् केन्द्रेश से (जातिवाचक में एकवचन) सम्बन्ध बने तो राजयोग होगा।

निष्कर्ष–इस विवादास्पद स्थिति में से हमें अपना मार्ग किस प्रकार से निश्चय करना है; इसे जानने के लिए पूर्वपठित व निगृहीत अर्थ को हृदय में बिठाना होगा।

(1) यह बात सिद्ध हो चुकी है कि केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध राजयोग कारक होता है।

(2) सम्बन्ध करने वाले ग्रहों में पूर्वोक्त चार सम्बन्धों में से कौन-सा सम्बन्ध है? इससे उनके शुभ फल का न्यूनाधिक्य निश्चय करना चाहिए।

(3) इसी प्रकार त्रिकोणों में व केन्द्रों में क्रमशः उत्तरोत्तर बलवत्ता की बात पीछे बताई गई है। अतः मानना होगा कि सम्बन्धकारक ग्रहों

में भी भावेशत्व के आधार पर क्रमशः श्रेष्ठता मानी जानी चाहिए। योगकारक पंचमेश से योगकारक नवमेश का फल अधिक ही होगा।

(4) ग्रन्थकार को यदि यही बताना होता कि केन्द्रेश व त्रिकोणेश का सम्बन्ध सुयोगकारक है तथा दशमेश व बली त्रिकोण नवमेश का यहाँ ग्रहण होगा, तो इससे बड़ी पुनरुक्ति क्या हो सकती है।

हमारा स्पष्ट व निश्चित मत है कि यहाँ पर बलवान् शब्द की बलवत्ता का निर्णय उच्चादि राशियों के आधार पर ही होगा।

पहले की कई कारिकाओं में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से केन्द्रेश व त्रिकोणेश के सम्बन्ध को योगकारक कहा है। वहीं पर कहा गया है कि इनमें उत्तरोत्तर बलवत्ता है। अतः सरलता से यह बात कही जा सकती है कि बलवान् केन्द्रेश (दशमेश) यदि बलवान् त्रिकोणेश (नवमेश) से सम्बन्ध करे तो उत्तम योग होगा।

(5) अपने इस मन्तव्य को प्रकट करने के लिए ग्रन्थकार ने कारिका 16 में 'धर्मकर्मणोः' शब्द ग्रहण किया है।

इससे ठीक अगली 17वीं कारिका में फिर पुनरुक्ति क्यों?

एतदर्थ हमें मानना होगा कि पहले बताए गए क्रमशः उत्तम राजयोगों में भी अधिक उत्तम राजयोग कब बनेगा। अर्थात् उत्तम योगों में सर्वोत्तमता या उत्तमोत्तमता का आधार किस प्रकार होगा।

(6) इसी बात को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तुत कारिका की अवतारणा की गई है।

अतः स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि योगकारक त्रिकोणेशों व केन्द्रेशों में सम्बन्ध होने पर किसी एक की उच्च स्थिति हो तो उत्तमोत्तम राजयोग, मूलत्रिकोण स्थिति हो तो कुछ कम उत्तमोत्तम राजयोग और स्वगृह स्थिति हो तो कुछ और कम शक्ति का उत्तमोत्तम राजयोग बनेगा।

उत्तमोत्तम राजयोगों में भी कई विभाग मानने पर भी ये योग उत्तमोत्तम ही रहेंगे, क्योंकि इनकी उत्तमोत्तमता पूर्वोक्त योगों की अपेक्षा से ही कही गई है।

उदाहरणार्थ दशमेश व नवमेश परस्पर क्षेत्र सम्बन्ध किये हों तो निःसन्देह श्रेष्ठ राजयोग बनेगा।

यदि इन दोनों योगकारकों में से एक ग्रह उच्चगत हो या मूल त्रिकोणी हो या स्वगृही हो तो इनकी श्रेष्ठता, शक्ति व सीमा निःसन्देह बहुत अधिक बढ़ जाएगी।

(7) यदि दोनों ही केन्द्र त्रिकोणेश उच्च मूल स्वगृही हों तो फिर क्या शेष रहेगा? अर्थात् तब तो राजयोग अद्वितीय श्रेष्ठतम बनेगा।

इसी तारतम्य को बताने के लिए यहाँ 17वीं कारिका लिखी गई है। यही वास्तविक व्याख्या है। पाठक स्वयं निर्णय करें। इसके बावजूद भी लग्न या लग्नेश से इनका कथमपि सम्बन्ध अधिक श्रेष्ठ फलदायक होगा।

प्रत्येक परिस्थिति में योगकारक ग्रहों की दीप्त, स्वस्थ, मुदितादि अवस्थाएं अर्थात् उच्चादि राशिगत होना योग की शक्ति को बढ़ाएगा और इसके विपरीत होने पर प्रभाव को कम करेगा।

इस बात को बिल्कुल स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ कुछ उदाहरण देंगे–

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी की इस कुण्डली की मुख्य बातें (राजयोग) ये हैं–

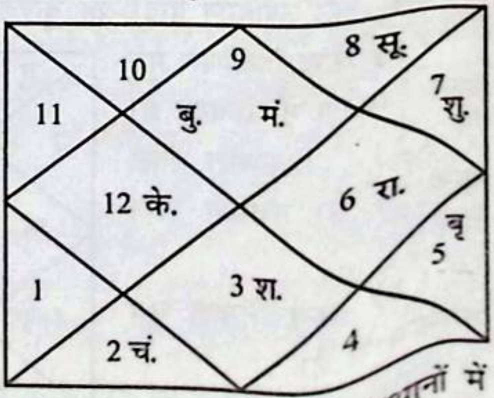

(1) लग्नेश व चतुर्थेश गुरु (केन्द्र त्रिकोणेश) बली नवम त्रिकोण में है।

(2) सप्तम दशमेश बुध लग्न (केन्द्र त्रिकोण) में है।

(3) पंचमेश मंगल भी लग्न में है।

अतः सारे केन्द्रेशों का त्रिकोण या त्रिकोणेशों से उन्हीं स्थानों में सम्बन्ध है। अतः प्रबल राजयोग बना। साधारण परिवार में उत्पन्न होकर भारत के सर्वोच्च पद पर आसीन रहे। कारण राजयोग ग्रह भावस्थिति से बली है।

श्री मोरारजी देसाई की कुण्डली में विशेष योग ये हैं–

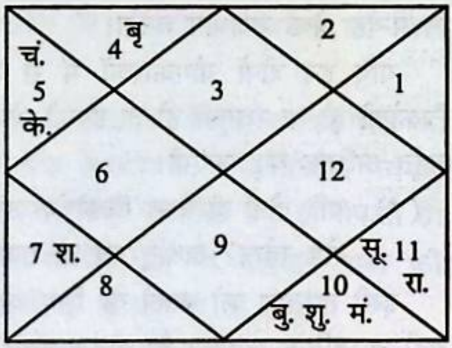

(1) केन्द्रेश गुरु पंचम त्रिकोणश से दृष्टि सम्बन्ध रखता है। गुरु उच्चगत है, किन्तु दोनों ही योगकारक ग्रह भाव स्थिति से उतने बलवान् नहीं हैं।

(2) नवमेश शनि दूसरे त्रिकोण में उच्चगत है तथा गुरु से दृष्टि सम्बन्ध रखता है। गुरु दो-दो केन्द्र स्थानों का स्वामी है। अत: राजयोग है; लेकिन भाव स्थिति व सम्बन्ध बल के आधार पर राष्ट्रपति की अपेक्षा कम उच्च पद का योग बनाता है।

(3) केन्द्र त्रिकोणेश बुध भी अष्टम भाव में भाव स्थिति से उतना बली नहीं है। अत: इनका राजयोग राजेन्द्र प्रसाद जी की अपेक्षा कम शक्ति वाला है। सर्वत्र योगकारकों में अष्टमेश के स्पर्श के कारण राजयोग की प्राप्ति में बाधाएं भी आती हैं। उच्चगत योगकारक होने पर भी उच्चस्तरीय राजयोग नहीं मिला।

एक और उदाहरण देखें। यह कुण्डली श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की है।

(1) केन्द्र त्रिकोणेश गुरु अन्य त्रिकोण में उच्चगत है।

(2) त्रिकोणेश मंगल केन्द्र में है। पंचमेश लग्न में है।

(3) अन्य केन्द्रेश बुध समभाव में है।

अत: श्रेष्ठ राजयोग बनता है। केन्द्रेश त्रिकोणों में, त्रिकोणेश केन्द्रों में हैं; लेकिन चतुर्विध सम्बन्ध में से कोई सम्बन्ध न होने के कारण सम्बन्ध की दृष्टि से योगकारक ग्रह निर्बल हैं।

विशेषतया नवम-दशमेश का परस्पर सम्बन्ध नहीं है। अतः उच्च राजकीय पद नहीं मिला; लेकिन सभी त्रिकोणेश कथमपि केन्द्रों से सम्बन्ध बनाए हुए हैं। राशिदृष्ट्या व भावदृष्ट्या बली हैं; अतः विश्व प्रसिद्धि, धन व मान-प्रतिष्ठा खूब मिली।

पीछे फलनिर्णयाध्याय कारिका 13 की व्याख्या में तुला लग्न वाली कुण्डली दी गई है। उस पर दृष्टिपात करें–

(1) नवमेश बुध सम स्थान में है। अतः केन्द्र त्रिकोणेश सम्बन्ध नहीं बना।

(2) लग्नेश स्वगृही लग्न में है।

(3) केन्द्रेश व त्रिकोणेश शनि की एकता व केन्द्र में ही स्थिति है। अतः अच्छा योग है।

सम्बन्ध चतुष्टय नहीं है। त्रिकोणेश बुध विशेष योगकारक नहीं है। शुक्र व शनि योगकारक हैं।

इनकी आय पाँच अंकों में उच्चस्तरीय है, विदेश सेवा में उत्तम, पदवी है।

अब इस अगली कुण्डली पर भी दृष्टिपात करें। इनके पिता का तो बहुत अच्छा व्यापार है। बड़े धनी मानी सज्जन हैं। लेकिन इन्होंने स्वयं अपने जीवन में अभी तक कोई उपलब्धि नहीं पाई है। इनकी महत्त्वाकांक्षाएं बहुत हैं, लेकिन स्वयं की अपनी विशेष प्राप्ति कुछ नहीं है, सब कुछ पैतृक सम्पत्ति का ही प्रताप है।

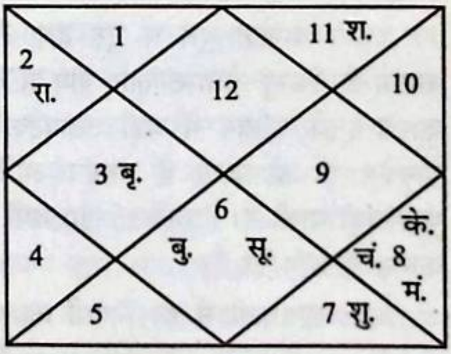

लग्नेश व दशमेश केन्द्र (चतुर्थ) में है। दोनों त्रिकोणेश नवम में ही हैं। केन्द्रेश बुध भी केन्द्र में ही है। परस्पर मंगल चन्द्र में सहावस्थान (सबसे निर्बल) सम्बन्ध है। केन्द्र त्रिकोण परस्पर असम्बद्ध होते हुए भी बली है। अतः स्वयंकृत राजयोग नहीं बना है। इस कुण्डली में बुध

उच्चगत है व मंगल स्वगृही है। अतः इन्हें पिता की आर्थिक स्थिति के आधार पर विलास सुख प्राप्त हैं, अपना कुछ नहीं है।

यदि वे ग्रह परस्पर सम्बन्ध भी करते हों, किन्तु नीचास्तंगतादि अवस्था में हों तो निश्चय से योगभंग हो जाता है। उदाहरणार्थ इस कुण्डली को देखें–

वि सं. 1986

भैया दूज, रविवार

इष्टकाल 54/05 घटी।

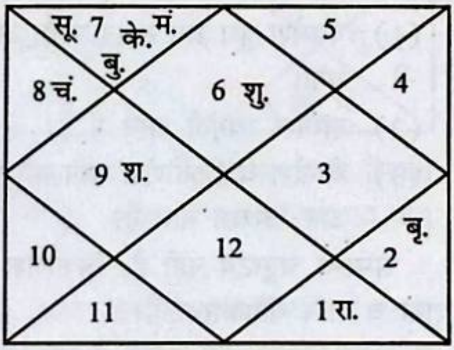

नवमेश शुक्र नीच राशि में लग्न में है। पंचमेश शनि भी केन्द्र में है। अन्य केन्द्रेश गुरु नवम त्रिकोण में है।

केन्द्रेश बुध अस्तंगत है। त्रिकोणेश शुक्र नीचगत है। अन्य केन्द्रेश गुरु केन्द्राधिपत्य दोष से युक्त है और नीचगत चन्द्रमा से दृष्ट है। चन्द्रमा क्षीण भी है। शनि नीच नवांश में है। केवल गुरु उच्च नवांश में है, तथापि सामान्य योगप्रद है।

यद्यपि केन्द्रेश बुध व गुरु तथा त्रिकोणेश शनि व शुक्र सम्बन्ध कारक हैं, किन्तु नीचास्तंगतादि दोष से दूषित हैं। फलस्वरूप योगभंग के कारण इनके जीवन में बड़ी उठापटक रही है। सदैव ऋणी रहते हैं। योगक्षेम तो हो जाता है तथापि आर्थिक स्थिति असामान्य रूप में घटा-बढ़ी वाली है। पिछले 25-30 वर्षों से सदा इनका ऋण बढ़ रहा है। कारण योगभंग ही है।

अतः सावधानी से इन नियमों का प्रयोग करना चाहिए।

नियम बड़े सटीक हैं, लेकिन गूढ़ हैं। अतः खूब समझकर मस्तिष्क में विषय को स्थिर करके फल कहना चाहिए।

योगकारक ग्रहों की दशा व फल प्राप्ति का नियम :

दशास्वपि भवेद्योगः प्रायशो योगकारिणोः।
दशाद्वयीमध्यगतस्तदयुक् शुभकारिणाम्॥ 18॥

योगकारकसम्बन्धात् पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः।
तत्तद् भुक्त्यनुसारेण दिशेयुर्योगजं फलम्॥ 19॥

यहाँ दो बातें बताई जा रही हैं।

(1) योगकारक ग्रहों की दशा या अन्तर्दशा के मध्य पड़ने वाली शुभ ग्रहों की दशा या अन्तर्दशा में भी उक्त योग का फल प्रायः मिलता है।

(2) इसी प्रकार दो योगकारक ग्रहों की दशा के मध्य पड़ने वाली पापग्रह की दशा में निश्चय से योग का फल होता है, यदि वह पापी दशेश किसी योगकारक ग्रह से सम्बन्ध करता हो।

इस प्रसंग को स्पष्ट किया जाता है। पहले बता चुके हैं कि पाराशर मत में कौन से ग्रह शुभ माने जाते हैं और कौन से पापी? तदनुसार विचारणीय कुण्डली में से शुभ, पाप, अत्यन्त शुभ और अत्यन्त पाप ग्रहों का वर्गीकरण करके एकत्र रख लें।

अब देखना यह है कि योगकारक ग्रहों का शुभ फल जातक को कब मिलेगा? यह तो एक स्वाभाविक प्रश्न है कि शुभ व पाप ग्रहों का निर्णय होने के बाद हम यह जानना चाहेंगे कि इस शुभाशुभ फल की प्राप्ति जीवन में कब होगी। इस विषय का साधारण नियम पाठक को अपने मन में स्थिर कर लेना चाहिए। योगकारक ग्रह की दशा का फल उसकी दशा में, उसके सम्बन्धी ग्रहों की दशा या अन्तर्दशा में या गोचरादि में होगा।

अस्तु, अब प्रश्न यह है कि कर्क लग्न में योगकारक मंगल, गुरु, राहु, बुध आदि की योगकारकता सिद्ध होती हो, तब इनका फल अपनी दशा में (अपनी शुभ दशा में, अपनी शुभ अन्तर्दशा में नहीं) होगा।

माना कर्क लग्न में राहु की दशा में जन्म है। तब अगली दशा कुछ कम योगकारक गुरु की होगी, तथा उससे अगली शनि (पापतम) की होगी। फिर बुध की दशा होगी।

अब योगकारक गुरु व योगकारक बुध की दशाओं में तो शुभ फल मिलेगा ही, लेकिन बीच में लम्बे समय के लिए जो शनि की दशा आएगी तो उसका फलादेश कैसे होगा?

इसी विषय को उक्त कारिकाओं में स्पष्ट किया गया है। इस स्थिति में कहा गया है कि दो योगकारक ग्रहों की दशा के बीच में पड़ने वाली दशा में भी योग का फल प्रायः मिलता है। इसके नियम इस प्रकार हैं–

(1) यदि मध्यवर्ती दशा का स्वामी ग्रह पाराशर मत से शुभ हो तब उसकी दशा में भी शुभ फल अर्थात् योगफल की प्राप्ति सम्भव है। निश्चय से योग का फल नहीं होता है।

(2) इस 'प्रायः' शब्द में ही यह रहस्य छिपा है कि दो योग दशाओं के बीच में पड़ने वाली शुभ ग्रह की दशा में तब सामान्य योग का फल (सम) होगा जब वह ग्रह योगकारकों से सम्बन्ध न रखता हो।

(3) इसके विपरीत यह शुभ दशेश योगकारकों से सम्बन्ध रखता हो तो योग का प्रचुर फल देगा।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि योगकारकों के मध्य में आने वाली असम्बन्धी शुभ ग्रह की दशा सामान्य होती है और सम्बन्धी शुभ ग्रह की दशा में अपने पड़ौसी दशेशों का योगफल ही प्रचुरता से होगा। यही पद्धति अन्तर्दशाओं में भी लागू होगी।

यह तो शुभ दशेश की बात हुई। अब मध्यगत दशा का स्वामी यदि पाराशर मत से पापी हो तो फल की क्या व्याख्या होगी। इस विषय को 19वीं कारिका में बताया गया है।

(1) यदि मध्यगत दशेश पाराशर मत से पापी हो तब भी वह सामान्य शुभ फल देगा, यदि पूर्वोक्त योगकारकों से सम्बन्ध न रखता हो, अर्थात् असम्बन्धी पापग्रह तो अपना पाप फल ही प्रचुर मात्रा में देगा।

(2) यदि उक्त मध्यगत दशेश योगकारकों से सम्बन्ध रखता हो तो वह अपनी दशा में निश्चय से, पक्के तौर पर योगफल ही देगा, यह निश्चित नियम है।

(3) यह नियम तब भी लागू होगा जब उक्त मध्यवर्ती दशेश स्वयं मारकेश भी क्यों न हो।

(4) लेकिन मारकेश होने पर भी वह अपने दशाकाल में तभी अशुभ फल दे सकेगा जब लगातार सम, अशुभ व सम या सम, सम, अशुभ आदि प्रकार से योगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा के संपर्क से रहित अन्तर्दशाएं आएंगी।

अर्थात् सम्बन्धी ग्रह चाहे पाप हो या शुभ; वह अपनी मध्यगत दशा में शुभ फल ही देगा। यह बात 'योगकारक सम्बन्धात्' पद से स्पष्ट है। यदि असम्बन्धी ग्रह की दशा हो तो वह सामान्य शुभ फल ही देगा। अर्थात् कभी-कभी शुभ फल देगा, यह बात 'तदयुक्' शब्द से ही स्पष्ट हो जाती है।

इस विषय को हम उदाहरण से स्पष्ट करना चाहते हैं। पीछे श्रीमती गांधी की जन्म कुण्डली दी गई है। इन्हें जन्म समय सूर्य की दशा 1, 2, 20 वर्षादि शेष थी। शनि दशा 9-2-1970 को शुरू हुई। और 9-2-1989 को समाप्त होती। शनि में राहु अन्तर्दशा में उनका निधन हुआ। निधनकालीन स्थिति का हम आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य पृ. 460-462 पर विवेचन कर चुके हैं। यहाँ केवल पाराशरीय नियम को स्पष्ट करना मात्र ही उद्देश्य है। शनि अष्टमेश है। अतः पापतम है। साथ ही केन्द्रेश होकर लग्न में है। अतः शनि कारक भी है। शनि लग्नेश से श्रेष्ठ सम्बन्ध करता है। अतः शनि दशा में राजयोग का उत्कर्ष सिद्ध होता है। उक्त पाराशर नियम यहाँ स्पष्ट है। कारक शनि का फल, राजयोग, फरवरी 1973 तक फलित हुआ। बांग्ला देश का उदय व संसार में प्रसिद्धि मिली। युद्ध में अभूतपूर्व विजय व चुनाव में अभूतपूर्व सफलता मिली।

बुध स्वयं सम है, तथा केतु राहु पाप हैं। अतः बुध की अन्तर्दशा में सामान्य शुभ फल हुआ, राजयोग भंग तो नहीं हुआ, लेकिन आपातकाल की घोषण भुक्ति के अन्तिम समय में हो गई। सम बुध व पाप शुक्र की बीच वाली अन्तर्दशा केतु की रही। इस समय में जो-जो हुआ वह सर्वविदित है। इक्कबाल कम हुआ, सर्वत्र बदनामी हुई। बाद में 30-11-76 से जनवरी 1980 तक शुक्र की अन्तर्दशा में छत्रभंग, गिरफ्तारी, मुकदमे, आयोग फल मिले। यहाँ शुक्र पापी था। शनि से सम्बन्ध नहीं करता था। अतः पाप फल मिला। उत्तर कालामृत के नियमानुसार शनि में शुक्र की अन्तर्दशा अच्छी नहीं होती है।

शनि में सूर्यान्तर का आरम्भ होते ही राजयोग का पुनरुदय हुआ। सूर्य सम भावेश होकर त्रिकोण में है और कारक श्रेष्ठ मंगल से श्रेष्ठतम क्षेत्र सम्बन्ध रखे है, अतः राजयोग मिला। चन्द्रमा लग्नेश की अन्तर्दशा में भी शुभ फल मिला। 2, सितम्बर 1983 तक मंगल की अन्तर्दशा थी। राहु की अन्तर्दशा शुरू होते ही अनिष्ट फल मिल गया। राहु षष्ठ अनिष्ट स्थान में है। पापी शुक्र के साथ है। अतः शनि का पाप फल इस पाप अन्तर्दशा में घटित हो गया।

अतः पापी ग्रह की महादशा में भी शुभ या सम्बन्धी ग्रहों की अन्तर्दशाएं शुभ फल ही देती हैं। पापी या असम्बन्धी ग्रहों की दशाएं अशुभ फल देती हैं।

दशा-अन्तर्दशाओं का यह संक्षिप्त सिद्धान्त यहाँ प्रसंगवश आ गया है। आगे दशाध्याय में दशाओं के फलादेश के विशिष्ट नियम भी बताए जाएंगें। इस प्रसंग का विषय वहाँ भी काम आएगा, अतः पाठक इसे मस्तिष्क में स्थिर कर लें।

अब फिर अपने प्रकृत विषय पर अर्थात् योग फल पर आते हुए अगली कारिका की अवतारणा की जा रही है–

अन्य श्रेष्ठ योग :

केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योगकारकौ।
अन्यत्रिकोणपतिना सम्बन्धो यदि किं परम्॥ 20॥

यदि केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी कोई एक ही ग्रह हो तो वह योगकारक होता है।

यदि वह केन्द्र त्रिकोणेश, दूसरे त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध करे तो फिर मणि-कांचन संयोगवत् बहुत श्रेष्ठ योग बनता है।

यहाँ पर एक अन्य योग प्रकार बताया जा रहा है। यदि केन्द्रेश त्रिकोणेश से सम्बन्ध करे तो उस सम्बन्ध से बनने वाले योगों के विषय में पिछली कारिकाओं में विस्तारपूर्वक विवेचन किया जा चुका है। यहाँ पर बताया जा रहा है कि कोई एक ही ग्रह यदि केन्द्र स्थानों में से किसी एक का और साथ ही त्रिकोणों में से किसी एक स्थान का स्वामी हो तो वह ग्रह भी अच्छा योगकारक होता है।

योग अर्थात् शुभ फल से जातक को जोड़ना। ऐसी स्थिति कर्क लग्न में मंगल के लिए बनती है। मंगल वहाँ पर दशम स्थान का स्वामी होकर पंचम त्रिकोण का भी स्वामी होता है। अतः यह केन्द्र त्रिकोण का एकाधिपति होने से योगकारक होता है। यदि कर्क लग्न में मंगल स्वक्षेत्री, उच्चादि राशियों में स्थित होने से बलवान् हो तो वह अच्छा शुभ देगा। यह निश्चित है।

इसी प्रकार सिंह लग्न में भी चतुर्थेश व नवमेश मंगल योगकारक सिद्ध होगा। यदि यह केन्द्र या त्रिकोण में स्वक्षेत्री, मूल त्रिकोणी या उच्च राशिगत हो तो परम सुखदायक सिद्ध होगा। इसके विपरीत नीचास्तंगतादि होने पर वह असमर्थ हो जाएगा।

इसी प्रकार तुला लग्न में शनि चतुर्थेश व पंचमेश होकर, वृष लग्न में नवमेश व दशमेश होकर शनि भी प्रबल योगकारक हो जाता है।

कारिका में प्रयुक्त 'योगकारकौ' शब्द में द्विवचन का प्रयोग करने का रहस्य है कि वह एक ही ग्रह केन्द्रेशत्व व त्रिकोणेशत्व से युक्त होकर दो गुणों वाला होकर दो हैसियत से काम करेगा। अतः धर्मभेद या गुणभेद से ही धार्मिक या गुणी में भेद का स्वीकार किया जाना शास्त्र सिद्ध है। यह भेद परमावश्यक है। यदि भेद स्वीकार न किया जाए तो आगे आने वाली कारिकाओं के अर्थ में असंगति पैदा हो जाएगी। अतः लघुपाराशरी कारिका का प्रत्येक शब्द यहाँ तक कि प्रकृति प्रत्ययादि में भी विशेष अर्थ छिपा हुआ है, यह बात पाठकों को सदा याद रखनी चाहिए। पहले बताया जा चुका है कि एक ही ग्रह को जब दो विरुद्ध धर्म (शुभ व अशुभ) प्राप्त हो रहे हों तो वह दोनों ही प्रकार का फल देता है। यहाँ पर ऐसा नहीं है। एक ही ग्रह केन्द्रेश होकर अशुभ या पाप हो सकता है और त्रिकोणेश होकर शुभ होता है। तथापि वह योगकारक रहेगा। इस प्रकार यदि केन्द्रेश व त्रिकोणेश होकर योगकारक बना कोई एक ही ग्रह अन्य त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध करे तो क्या कहना?

उदाहरणार्थ कर्क लग्न में मंगल यदि नवमेश गुरु से भी सम्बन्ध करता हो तो परम शुभदायक हो जाएगा। यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है।

आशय यह है कि राहु केतु किसी भाव में अकेले हों, तब तो भावसाहचर्य से इनका फल निर्णय हो जाएगा, लेकिन ये सदा तो अकेले नहीं होंगे। ऐसी स्थिति में जिस ग्रह के साथ होंगे उसकी फल शक्ति को भी प्राप्त कर लेंगे।

यदि शुभ भावेश के साथ बैठें तो ये शुभ होंगे और अशुभ भावेश के साथ बैठें तो ये भी अशुभ ही हो जाएंगे। यही भावेश साहचर्य कहलाता है। पाराशर मत से शुभ व अशुभ भावों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। अत: निष्कर्ष इस प्रकार रहेगा–

(क) यदि राहु केतु अकेले हों तो–

(1) केन्द्र या त्रिकोण में स्थित होने पर निसर्ग पाप केन्द्रेश की राशि में अशुभ व त्रिकोणेश की राशि में शुभ होंगे।

(2) शुभ केन्द्रेश की राशि में सम फलदायक होंगे।

(3) यदि केन्द्रेश व त्रिकोणेश ग्रह साथ ही 3, 6, 8 भावों का भी अधिपति हो तो राहु व केतु में कुछ अशुभता भी आ जाएगी।

(4) यदि ये दोनों 3, 9, 11 स्थानों में हों तो भी सामान्यत: शुभ होंगे, क्योंकि इस स्थिति में इनमें से एक त्रिकोण व दूसरा द्वादश (सम) भाव में होगा।

(5) अष्टम में सदैव पापी रहेंगे।

(ख) यदि इनके साथ कोई अन्य ग्रह भी हो तो–

(1) पापी केंद्रेश व त्रिकोणेश के साथ सदा शुभकारी रहेंगे।

(2) शुभ केन्द्रेश के साथ होकर यदि त्रिकोणेश से युक्त हों तो योगकारक होंगे।

(3) 3, 6, 11 स्थानेशों के साथ सामान्य शुभ रहेंगे।

(4) अष्टमेश के साथ सदा पापी रहेंगे।

(5) भावेश के साथ-साथ भाव साहचर्य का फल भी इस स्थिति में इनके साथ मिश्रित रूप से रहेगा।

इस विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए यहाँ एक उदाहरण दिया जा रहा है।

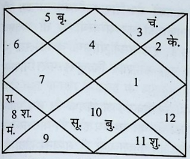

यहाँ मंगल योगकारक है, यह निःसन्दिग्ध है। मंगल केन्द्रेश व त्रिकोणेश होकर त्रिकोण में स्थित है। अतः योग हुआ।

दूसरे त्रिकोणेश गुरु के साथ पाराशरोक्त चतुर्विध सम्बन्धों में से कोई सम्बन्ध नहीं बनता है। केन्द्र सम्बन्ध अवश्य है। अस्तु राहु भी त्रिकोण में योगकारक मंगल के साथ है। राहु त्रिकोणगत होने के कारण शुभ भाव साहचर्य के नियम से शुभ फलदायक है। भावेश साहचर्य के आधार पर मंगल के साथ होने के कारण राहु पर मंगल का भी प्रभाव है। इसी कारण इस कुण्डली में राहु भाव व भावेश दोनों के साहचर्य से ही निर्विवाद रूप से योगकारक सिद्ध होता है।

लेकिन मंगल व राहु ही अकेले होते तो बड़ा शुभ योग बनता। जिस प्रकार नींबू की एक ही बूंद बढ़िया दूध को बिगाड़ देती है, उसी प्रकार अशुभ प्रभाव अवश्य ही शुभ फल को यथावसर कम करता है।

इनके साथ शनि पाप केन्द्रेश होने के कारण शुभ है लेकिन अष्टमेश होने के कारण उसकी पापिता में सन्देह नहीं है। यही कारण है कि शनि वहाँ पहुँचकर पाप प्रभाव डाल रहा है।

अतः मंगल व राहु का प्रभाव कम से कम आधा तो समाप्त हो गया है।

इन्हें अभी तक राज्य पक्ष से कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं हुई है। एक अर्धसरकारी संस्थान में सेवा करते हैं। तथापि आर्थिक स्थिति, सुख, विद्या आदि उत्तम है।

अतः राहु व मंगल मिलकर जो 'एक और एक ग्यारह' की स्थिति बना रहे थे, उनके संगठन को शनि ने अवश्य ही क्षति पहुँचाई है। हम यहाँ यह बता देना चाहते हैं कि अनुभव साक्षी पर कहा जा सकता है कि

कर्क लग्न वालों को शनि बहुत अशुभ फल नहीं देता है। अष्टम स्थान का कारक होने के कारण तथा अष्टम में मूल त्रिकोण राशि पड़ने के कारण इसमें कर्क लग्नोत्पन्न जातकों के लिए मारकत्व तो आ ही जाता है; लेकिन शनि यदि योगकारकों का सम्बन्धी हो तो अवश्य अपने दशाकाल में अभ्युदय देता है, ऐसा हमने बीसियों कुण्डलियों में देखा है। अतः हमारे विचार से यहाँ भी शनि बिल्कुल फल नाशक नहीं है।

अब सम्बन्ध के विषय में भी स्पष्टीकरण आवश्यक है। हम पहले बता चुके हैं कि पाराशर मत में ग्रहों के चार सम्बन्ध होते हैं। पाराशर मत के विद्वान् मानते हैं कि राहु व केतु का केवल एक ही सम्बन्ध होता है, शेष तीन सम्बन्ध इनके नहीं होते हैं।

प्रथम सम्बन्ध क्षेत्र सम्बन्ध है। जब राहु केतु की कोई अपनी स्वराशि ही नहीं है, अर्थात् ये ऐकान्तिक रूप से किसी भी राशि का आधिपत्य नहीं करते, तब क्षेत्र सम्बन्ध कैसे बनेगा? अतः विद्वानों ने राहु केतु का क्षेत्र सम्बन्ध नहीं माना है। यही बात हमें भी तर्क संगत प्रतीत होती है।

यद्यपि विद्वानों ने राहु केतु के स्वगृहोच्चादि के विषय में अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं, लेकिन उनमें मतभेद हैं। उदाहरणार्थ **संकेत निधि** के अनुसार राहु की स्वराशि कन्या व केतु की मीन है। **जातक परिजात** में भी इसी मत को स्वीकृतिं दी गई है।

मिथुन व धनु भी क्रमशः इनके स्वस्थान माने जाते हैं। इत्यादि मत-मतान्तरों की स्थिति में हमें यह बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है कि राहु केतु इन राशियों में बली हो सकते हैं। लेकिन ये इनके स्वस्थान तो नहीं हो सकते हैं। यदि हम पाराशरी के आधार पर राहु का फल 'भाव साहचर्य' से भी मानें और दूसरी ओर मिथुन, कन्या प्रभृति राशि को उनका स्वगृह भी स्वीकार करें तो यह बात परस्पर बाधित है।

पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि राहु केतु जिस राशि में बैठते हैं, उसी स्थान या स्थानेश के समान होते हैं और अपने साथ बैठे अन्य ग्रहों का प्रभाव भी प्राप्त कर लेते हैं। अतः साथ-साथ बैठना अर्थात् सहावस्थान सम्बन्ध ही इनका माना जा सकता है।

दूसरा सम्बन्ध स्वस्थानस्थित दृष्ट सम्बन्ध है, इसे भी विद्वान् नहीं मानते हैं। कारण है कि '**यद्यद्भावगतौ**' कहकर केवल सहचर सम्बन्ध को स्वयं पाराशरीकार ने माना है। शेष सम्बन्धों में भी कोई न कोई अड़चन है। दृष्टि के विषय में कहा जाता है कि राहु केतु की 1, 5, 9, 7, 12 स्थानों पर पूर्ण दृष्टि होती है। अतः दृष्टि सम्बन्ध सम्भव है; किन्तु पाराशरी में सहावस्थान को ही इनका एकमात्र सम्बन्ध माना गया है और यही बात पाराशर सिद्धान्त के अनुकूल है। अतः राहु के साथ बैठने वाले ग्रह ही सम्बन्धी माने जाएंगे। **सुश्लोक शतक** में ऐसी ध्वनि प्राप्त होती है कि सप्तमस्थ ग्रह भी इनका सम्बन्धी होता है। वास्तव में राहु से केतु सदा सप्तम में रहता है। अतः राहु से सप्तमस्थ ग्रह केतु के और केतु से सप्तमगत ग्रह राहु के सम्बन्धी उक्त न्याय से बनेंगे। राजयोगादि के प्रसंग में राहु केतु यदि केन्द्र में हों तो दोनों ही योगकारक होंगे, लेकिन ये त्रिकोण में हों तो दूसरा ग्रह 3, 11 भाव में पड़ेगा, अतः वह फलयोग में कुछ न्यून ही होगा। अतः सरलार्थ यह है कि राहु व केतु केन्द्र या त्रिकोण में बैठकर उनसे सम्बन्ध करें (सहावस्थान सम्बन्ध) तो योगकारक होंगे।

केन्द्रगत होकर त्रिकोणेश के साथ हों तो श्रेष्ठ योगकारक और त्रिकोण में केन्द्रेश के साथ हों तो कुछ कम योगकारक होंगे।

राजयोग भंग :

धर्मकर्माधिनेतारौ, रन्ध्रलाभाधिपौ यदि।
तयोः सम्बन्धमात्रेण, न योगं लभते नरः॥ 22॥

यदि केन्द्रेश या त्रिकोणेश में से किसी एक की या दोनों की दूसरी राशि अष्टम या एकादश में पड़ती हो तो उन केन्द्र त्रिकोणेश के सम्बन्ध मात्र से ही मनुष्य् योग के फल को प्राप्त नहीं करता है।

अर्थात् उनके साथ अन्य केन्द्रेशों या त्रिकोणेशों का भी सम्वन्ध होने पर शुभ फल प्राप्त होगा।

पीछे कारिका 14 में बताया जा चुका है कि केन्द्रेश व त्रिकोणेश का परस्पर सम्बन्ध योगकारक होता है। यदि इनके साथ दूसरे ग्रहों का सम्बन्ध न हो तो विशेष फल मिलता है।

ये दूसरे कौन हैं? इस विषय में वहाँ स्पष्ट कर चुके हैं कि केन्द्र व त्रिकोणों के अतिरिक्त जो भाव बचते हैं, वे हैं–3, 6, 11; त्रिषडाय वर्ग, अष्टम भाव और द्विर्द्वादश अर्थात् लग्न से 2, 12 भाव।

स्पष्ट है कि अष्टम भाव सभी भावों में सबसे अधिक पापी है। कहा है कि '**भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।**'

द्वितीय व द्वादश भाव तो सम हैं। अतः इनका स्वतंत्र फल न होकर परसाहचर्य और स्थानान्तरानुगुण्य के आधार पर फल निर्णय होता है। अतः द्वितीयेश या द्वादशेश से युक्त यदि केन्द्रेश व त्रिकोणेश आपस में सम्बन्ध करेंगे तो वे योगभंगकारक नहीं होंगे।

अब शेष बचे 3, 6, 11 भाव। इनमें क्रमशः अधिक अशुभता आ जाती है। अतः इस वर्ग में लाभस्थान सबसे अधिक अशुभ होता है। और उधर अष्टम स्थान तो सब भावों में सर्वाधिक पापी है। अतः कारिका में कहा गया है कि रन्ध्रेश या लाभेश से प्रसक्त अर्थात् युक्त या स्पृष्ट योगकारक ग्रह अपना शुभ फल नहीं दे सकेंगे। तर्क स्पष्ट है कि 'इतरैरप्रसक्ता' कहकर कारिकाकार ने स्वयं कह दिया है कि केन्द्रत्रिकोणेश के सम्बन्ध में यदि 3, 6, 8, 11 भावों का या भावेशों का सम्बन्ध हो जाए तो निश्चय से योगभंग हो जाएगा। अब तृतीयेश व षष्ठेश कम पापी हैं और एकादशेश व अष्टमेश उत्तरोत्तर अधिक पापी हैं। अतः तृतीय या षष्ठ भाव से सम्बन्ध होने पर योगकारक ग्रहों का पूर्ण फल नष्ट नहीं होगा, उसमें ह्रास अवश्यंभावी है। लेकिन अष्टमेश व एकादशेश से सम्बन्ध होने पर निश्चय से योगभंग हो जाएगा।

ऐसे योगकारक ग्रह जो रन्ध्रलाभेश 8, 11 से भी युक्त हों तो अपने सम्बन्ध मात्र से ही योगकारक न हो सकेंगे। कारण यह है कि रन्ध्रलाभेशत्व के कारण उनकी शुभता स्थगति हो जाएगी। यदि अन्य योगकारक केन्द्रत्रिकोणेश से भी उसका संबंध होगा तभी फल मिलेगा। ऐसा आशय 'मात्र' शब्द से प्रतीत होता है। अथवा योगकारक तथा रन्ध्रलाभ सम्बन्धी ग्रहों की उच्चादि अवस्था होने पर सम्पूर्ण फलनाश नहीं होगा, ऐसा आशय भी सम्भव है।

अब अपनी बात को उदाहरण से स्पष्ट करने से पूर्व हम एक बात बताना चाहते हैं कि कारिका में प्रयुक्त 'धर्म कर्म' शब्द केन्द्र व त्रिकोण के ही वाचक हैं, यही मत हमें भी मान्य है।

(1) यदि इन शब्दों का अर्थ केवल नवम व दशम भाव ही करें तो ऐसी स्थिति केवल शनि की ही हो सकती है। वही लगातार दो राशियों, मकर व कुम्भ का अधिपति है। मेष लग्न में जन्म होने पर शनि दशमेश होने के साथ-साथ एकादशेश भी होता है। साथ ही मिथुन लग्न होने पर अष्टमेश व नवमेश शनि होता है। यदि मूल ग्रन्थकार का आशय ऐसा ही होता तो वे कह सकते थे कि मेष व मिथुन लग्न में शनि यदि किसी केन्द्रेश या त्रिकोणेश से संबंध करे तो योगकारक नहीं होगा। अतः **'धर्म कर्म'** पद का प्रयोग आवश्यक नहीं था।

(2) दूसरी बात यह है कि शनि के अतिरिक्त भी तो चार मंगलादि ग्रह दो-दो राशियों के अधिपति होते हैं। तब वे यदि नवमेश या दशमेश होने के साथ-साथ लोभेशाष्टमेश भी हों तो योगभंग नहीं होना चाहिए, क्योंकि उनकी ऐसी स्थिति कभी भी सम्भव नहीं है।

(3) यदि योगकारक त्रिकोणेश केन्द्रेश की दूसरी राशि रन्ध्र या लाभ में पड़ती हो तो वह सम्बन्ध मात्र से योगकारक हो जाना चाहिए, जबकि देखने में ऐसा नहीं आता है।

इन्हीं कारणों से धर्म व कर्म शब्द को यहाँ त्रिकोण व केन्द्र का परिचायक ही माना जाना योग्य है। पं. विनायक शास्त्री भी यही कहते हैं–

धर्मेशो रन्ध्रेशो मिथुनलग्ने शनिः स्यात्। धर्मशो लाभेशो न संभवति। कर्मेशो लाभेशो मेषलग्ने शनिरेव स्यात्। तदा लाघवान्मेषमिथुनलग्नयोः शनिमात्रसम्बन्धेन न योग इत्येव वक्तव्ये धर्मकर्माधिनेताराविति गुरूक्त्या धर्मकर्म पदे त्रिकोणकेन्द्रोपलक्षणे।

(1) मंगल की दो राशियों को देखिए। मेष लग्न में वही स्वयं अष्टमेश भी होगा; लेकिन **'स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम्'** के सिद्धान्त से वह योग-भंगकर्त्ता नहीं होगा। मकर लग्न में

चतुर्थेश व लाभेश मंगल उक्त प्रकार से योगभंग करेगा।

(2) बुध की ऐसी स्थिति सम्भव नहीं है। मिथुन व कन्या राशियां कभी भी केन्द्र या त्रिकोण में पड़कर साथ ही अष्टम या एकादश में नहीं आ सकतीं।

(3) यही स्थिति बृहस्पति की भी है। उसमें भी साथ-साथ केन्द्रेश-त्रिकोणेशत्व व रन्ध्रलाभेशत्व नहीं हो सकता है।

(4) शुक्र की यह स्थिति सम्भव है। वह कर्क लग्न में केन्द्रेश होकर लाभेश भी होता है। तुला लग्न में लग्नेश होकर अष्टमेश भी होता है, लेकिन वह शुभ फल का बिल्कुल नाश नहीं करेगा।

अत: मंगल व शनि, जो स्वाभाविक पापी ग्रह हैं वे यदि रन्ध्रेश व लाभेश होते हुए केन्द्रेश व त्रिकोणेश के साथ सम्बन्ध करें तो योग का भंग हो जाएगा।

शुक्र कर्क लग्न में एकादशेश होने से शुभ त्रिषडायेश होकर सर्वथा पापी नहीं रहता है।

इसी प्रकार से यदि तृतीयेश व षष्ठेश होकर मंगल शनि योगकारक के सम्बन्धी हों तो योगफल अर्थात् फल का सर्वथा भंग न होकर अंशतः ह्रास ही होगा। थोड़ी शुभता बची ही रहेगी।

अब कारिका 21 में दिए गए कर्क लग्न वाले उदाहरण को देखिए। वहाँ पर मंगल केन्द्रत्रिकोणेश होकर त्रिकोण में स्थित है तथा वह योग कारक है।

द्वितीय त्रिकोणेश गुरु से केन्द्रेश शुक्र का दृष्टि सम्बन्ध है, लेकिन शुक्र लाभेश भी है। अत: बृहस्पति व शुक्र का यह दृष्टि सम्बन्ध विशेष फल न देकर शुभ फल के भंग का ही द्योतक है। बृहस्पति भी षष्ठेश होने के कारण अल्प शुभ है। अत: यह सम्बन्ध इस जातक को शुभ फल देने में असमर्थ हो चुका है।

एक बात और। अष्टमेश व केन्द्रेश शनि भी पापी होकर गुरु पर पूर्ण दृष्टि रख रहा है। अन्य केन्द्रेश व त्रिकोणेश से इसका सम्बन्ध नहीं है, अत: योगभंग है।

अब योगकारक मंगल व राहु तो निर्विवाद से रूप से योगकारक हैं, लेकिन शनि के साथ होने के कारण अष्टमेश व केन्द्रेश से इनका सहावस्थान सम्बन्ध है जो निश्चय से इनके प्रभाव को दूषित कर रहा है।

मंगल राहु अपने प्रभाव से शुभ फल देने में समर्थ हैं, लेकिन शनि सदा शुभ फल प्राप्ति में बाधक सिद्ध होगा।

यदि बृहस्पति शुक्र के साथ मंगल या चन्द्रमा का भी सम्बन्ध हो जाता तो शुभ फल अवश्य मिलता। इस कुण्डली में चन्द्रमा निर्विवाद योगकारक है तथा मंगल से पूर्ण दृष्ट है। अतः मंगल राहु पर पड़ने वाला कुप्रभाव कुछ न्यून हो गया है। इन्हें आज तक सरकारी नौकरी भी नहीं मिली है, जबकि एतदर्थ ये प्रयत्नशील भी रहते हैं। योग्यता व क्षमता का पूरा उपयोग व लाभ इन्हें नहीं मिलता, दूसरे तीसरे दर्जे की स्थिति बनी रहती है। अतः गम्भीर गवेषणा करके फल कहने की आदत पाठकों को अपनानी चाहिए। हमने कुछ ज्योतिषियों को देखा है कि कोई पंक्ति याद कर उसके आधार पर एक झटके में ही कुण्डली को निरस्त या प्रशंसित कर देते हैं। ग्रहों के स्वतन्त्र फल को समवेत रूप में समझ कर ही निष्कर्ष निकालना अच्छा है।

कुशल ज्योतिर्विद् बनने की प्रबल चाह रखने वालों के लिए यही एकमात्र सफलता का सोपान है कि वे साधक बाधक नियमों की गवेषणा करते हुए, नियमों की परीक्षा प्रत्यक्ष रूप से कुण्डलियों में करते चलें।

॥ इत्युडुदायप्रदीपे लघुपाराशर्यां पं. सुरेशमिश्रकृतायां विद्याधरी-
हिन्दीव्याख्यायां योगफलाध्यायस्तृतीयः॥

4 | मारकाध्यायः

मारक स्थान का निर्णय :

अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत्।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते।। 23।।

जन्म लग्न से अष्टम स्थान आयुः स्थान कहलाता है। अष्टम से अष्टम अर्थात् तृतीय स्थान आयुः स्थान है।

इन दोनों से व्यय स्थान अर्थात् क्रमशः सप्तम व द्वितीय स्थान मारक स्थान कहलाते हैं।

अष्टम स्थान ही आयु का स्थान है, इस विषय में कोई सन्देह नहीं है। पीछे अष्टमेश की पापतमता का निर्णय हो चुका है। लघुपाराशरी में तर्क दिया गया है कि सभी व्यय स्थान हानि स्थान होते हैं; लेकिन शुभतम भाव (नवम) का व्यय स्थान अर्थात् नवम स्थान का व्ययस्थान, अष्टम परम अशुभ अर्थात् परम हानि स्थान है। संसार में भी सभी हानियों से बढ़कर जीवन की हानि ही होती है। अतः परम हानि अर्थात् जीवन की हानि। यही कारण है कि अष्टम स्थान को 'नास्ति' का प्रतिनिधि माना गया है। अतः परम अशुभ पदार्थ मृत्यु ही जीवन की उच्छेदक होने के कारण अष्टम के अन्तर्गत आती है। सभी भावों में मुख्य व गौण रूप से विभाग प्राप्त होता है। इसी कारिका को मस्तिष्क में रखकर ज्योतिष जगत् में 'भावाद्भावम्' का सिद्धान्त प्रचलित हुआ प्रतीत होता है।

जिस भाव का विचार करना हो उस भाव की संख्या लग्न से गिन कर प्राप्त कर लें। अब इस विचारणीय भाव से उतने ही स्थान आगे तक गिनकर जो भाव प्राप्त हो, उससे भी विचार करना चाहिए। यथा पंचम स्थान का विचार करना है तो पंचम के साथ नवम को भी देखिए तथा उसे भी गौण विद्या स्थान मानकर विचार करें। इसी प्रकार सप्तम से सप्तम, नवम से नवम इत्यादि भाव चिन्तन प्रकार का भी अवलम्बन करना महर्षि पराशर को अभीष्ट है। इसी कारण लग्न से अष्टम स्थान तो निश्चय से, मुख्य रूप से आयुः स्थान है और अष्टम से अष्टम अर्थात् तृतीय स्थान गौण रूप से आयुः स्थान है।

यहाँ हम एक निवेदन और करना चाहते हैं कि महर्षि पराशर के इस नियम का अप्रत्यक्ष प्रयोग जैमिनि मुनि ने अपने मत में 'पद लग्न' में किया है। पद व उपपदों से भी लग्नवत् विचार किया जाना मुनिवर को अभीष्ट है। उदाहरणार्थ लग्न का पद जानना है तो लग्नेश को देखिए कि वह लग्न से कितने स्थान आगे है। जितने भावों का अन्तर विचारणीय भाव व भावेश के मध्य होता है उतने ही भावों के अन्तर को पार कर आगे पड़ने वाले भाव में पद रहेगा।

उदाहरणार्थ पिछली कर्क लग्न वाली कुण्डली में षष्ठ स्थान का स्वामी गुरु द्वितीय में है। षष्ठ से द्वितीय तक गिनने से नौ भाव प्राप्त होते हैं। अतः गुरु से नौ भाव आगे दशम भाव में षष्ठ स्थान का पद पड़ेगा।

जिस प्रकार भाव से भावेश की दूरी व भावेश से भाव पद की दूरी को सर्वथा समान मानकर जैमिनी मुनि ने फलादेश का निर्देशन किया है; कदाचित् उसी बात के साथ उक्त कारिका के अर्थ को मिलाकर उत्तर **कालामृत** में लग्न से मुख्य भाव की दूरी व मुख्य भाव से गौण भाव की समान दूरी का सिद्धान्त निकाला है।

अस्तु, पुनः प्रकृत विषय को लें। अष्टम स्थान मुख्य व निश्चित रूप से आयु का स्थान है और तृतीय स्थान गौण रूप से आयु का प्रतिनिधित्व करता है।

इन दोनों के व्यय स्थान क्रमशः सप्तम व द्वितीय होते हैं। अतः ये दोनों ही मारक स्थान हैं।

जिस प्रकार आयु स्थानों में मुख्य-गौण विभाग है, उसी प्रकार मारक स्थानों में भी मानना चाहिए। मुख्य आयु स्थान का व्यय स्थान अर्थात् सप्तम भाव मुख्य रूप से मारक है और गौण आयु स्थान का व्यय स्थान अर्थात् द्वितीय गौण मारक है। इसी बात को अगले कारिकांश में बताया जा रहा है।

मारक स्थानों में भी मुख्य मारक स्थान –

तंत्राप्याद्यव्ययस्थानादुत्तरं बलवत्तरम्।।

इन दोनों मारक स्थानों में भी पहला मारक स्थान दूसरे की अपेक्षा बली होता है।

यहाँ प्रयुक्त 'आद्य' शब्द का अर्थ विद्वान् दो प्रकार से करते हैं। यदि लग्न से गिनें तो पहले द्वितीय स्थान तथा फिर सप्तम स्थान पड़ता है। अतः उन लोगों के मतानुसर आद्य शब्द से द्वितीय भाव का ही ग्रहण अभिप्रेत है।

पूर्वकारिका में अष्टम स्थान का पहले कथन कर फिर अष्टमादष्टम अर्थात् तृतीय स्थान का कथन हुआ है। अतः आद्य शब्द का अर्थ लग्न की अपेक्षा से न लेकर, अष्टम भाव (प्रथम प्रोक्त) की अपेक्षा से लेने पर सप्तम स्थान का ग्रहण सिद्ध होता है। अर्थात् सप्तम ही आद्य स्थान होता है। अतः एक मत में सप्तम स्थान बली मारक होता है और द्वितीय मत में द्वितीय स्थान बली मारक होता है।

पं. विनायक शास्त्री जी ने सप्तम को ही बली माना है उनका तर्क है कि मुख्य आयु स्थान का व्यय भाव ही बली मारक होना चाहिए।

'निश्चितायुःस्थानव्ययत्वात्सप्तमस्याधिकबलवत्वं समुचितम्। आनुषंगिकायुस्थानव्ययत्वाद् द्वितीयस्य तदपेक्षया न्यूनबलवत्वमप्युचितम्। इति'

लघुपाराशरी की प्राचीन सज्जनरंजनी व उद्योत टीकाओं में द्वितीय स्थान को बलवान् मारक माना गया है।

हम समझते हैं कि दोनों ही मारक स्थान हैं और दोनों के ही स्वामी ग्रह मारकेश कहलाते हैं। अतः दोनों आयु स्थान के व्ययस्थान और लग्न से व्यय स्थान के स्वामी मारकेश हो सकते हैं।

यहाँ प्रश्न यह है कि दोनों मारकों में बल का तारतम्य क्या हो? हमारे विचार से तो सप्तम स्थान ही बलवान् मारक है और द्वितीय स्थान कुछ कम बली मारक है। लेकिन द्वितीय स्थान में भी मारकता कार्यसाधन के लिए पर्याप्त होती है।

द्वितीयेश को समता प्राप्त होती है, लेकिन उससे उसकी मारकता की कोई हानि नहीं होती है। इसी प्रकार शुभ सप्तमेश को समता व मारकता साथ ही प्राप्त होनी है।

सप्तम प्रथम श्रेणी का मारक स्थान, द्वितीय द्वितीय श्रेणी का व द्वादश तृतीय श्रेणी का मारक स्थान होना चाहिए।

सप्तम की बलवत्ता का निर्णय हम इस आधार पर करते हैं–

(1) अष्टम स्थान का आयु स्थान होना निश्चित व निर्णीत है। अतः उसके व्यय स्थान को बली मारक मानना युक्तियुक्त है।
(2) यदि द्वितीय स्थान ही बलवान् होता तो मूल पाठ में 'द्वितीय' शब्द का प्रयोग किया जा सकता था। द्वितीय स्थान को निर्विवाद रूप से पाराशर मत में सम माना गया है जबकि सप्तम स्थान स्वामिभेद से शुभ या अशुभ हो सकता है।
(3) **'भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः'** कहकर सप्तम के मारक स्थान की निःसन्दिग्धता स्वयं ग्रन्थकार ने ही रेखांकित की है।
(4) मूल कारिका का अर्थ दोनों ही पक्षों में सरलता से लगता है, अतः पाराशर मत को आत्मा की अन्य कारिकाओं के आधार पर ही समझना होगा।
(5) **"अष्टमं ह्यायुषः स्थानं"** में अष्टम को ही प्रमुखता दी गई है।
(6) ज्योतिष के ग्रन्थों में–यथा **प्रश्नमार्ग, जातक पारिजात, ज्योतिस्तत्व, आयुर्निर्णय, फलदीपिका** आदि में अष्टमेश को मृत्यु निर्णय में बहुत मुख्य माना गया है।
(7) मेष लग्न में शुक्र स्वयं ही सप्तमेश व द्वितीयेश होता है। अतः मेषोत्पन्न जातकों के लिए शुक्र को परमानिष्टप्रद

माना जाता है–

मेषलग्ने तु जातस्य धनसप्तमनायकः।
शुक्रः करोति निधनमिति ज्यौतिषिका विदुः॥

(भावार्थ रत्नाकर)

भावार्थ रत्नाकर पाराशर सिद्धान्तों के आधार पर ही लिखा गया है। लेकिन तुला लग्न में **भावार्थ रत्नाकर** मंगल को मारकेश नहीं मानता, जबकि वह अकेला ही द्वितीयेश व सप्तमेश होता है।

तुला लग्ने तु जातस्य धनसप्तमनायकः।
न करोति कुजः पापः निधनं तु न संशयः॥

इसका कारण पाराशरी में ही छिपा हुआ है। शुक्र को सर्वाधिक केन्द्रेशत्व दोष लगता है। मेष लग्न में शुक्र केन्द्राधिपति दोष से दुष्ट होता है तथा द्वितीयेश होने के कारण उसका फल स्थानान्तरानुगुण्य के आधार पर सप्तमानुसार तय किया जाएगा। अतः वह महापापी मरणप्रद बताया गया है।

इसके विपरीत तुला लग्न में मंगल पाप होने के कारण केन्द्रेशत्व का दोषी नहीं होता और द्वितीयेशत्व के कारण सम ही रहता है। अतः वह मारक नहीं बताया गया है।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि सप्तम ही बलवान् मारक स्थान है तथा यही सिद्धान्तानुकूल है। द्वितीय को बली मारक मानकर व्याख्या करना टीकाकारों का भ्रम मात्र है।

(8) कर्क लग्न में शनि को ही मारक बताया गया है जो सप्तमेश है।

मारक ग्रह का निर्णय :

तदीशितुस्तत्रगताः पापिनस्तेन संयुताः॥ 24॥
तेषां दशाविपाकेषु संभवे निधनं नृणाम्।
तेषामसम्भवे साक्षाद् व्यायाधीशदशास्वपि॥ 25॥

दोनों मारक स्थानों के स्वामी ग्रहों अर्थात् द्वितीयेश व सप्तमेश की दशा में मरण सम्भव है।

अन्य ग्रह शुक्र गुरु आदि को भी मारक कहा गया है। अतः इनकी दशा में भी मरण सम्भव है।

मारक स्थान में स्थित होने पर इनकी मारकता बढ़ जाती है। अतः मारक स्थान स्थित मारकेशों की अथवा पापी ग्रहों से युक्त मारकेशों की दशान्तर्दशाओं में मनुष्य की मृत्यु हो सकती है, यदि सम्भव दीखता हो।

इन सभी दशान्तर्दशाओं की सम्भावना आयु खण्ड में न आती हो तो व्ययेश अर्थात् लग्न से द्वादशेश की दशान्तर्दशाओं में मरण हो सकता है।

लग्न से द्वितीय व सप्तम स्थान को मारक स्थान बताया गया है। मारकेश का तात्पर्य है जो मारकत्व का ईश हो। यद्यपि सभी द्वितीयेश व सप्तमेश मारक होते हैं यह एक सामान्य नियम है, तथापि पहले कह चुके हैं कि सप्तमेश होकर गुरु व शुक्र केन्द्राधिपत्य दोष से युक्त हो जाते हैं और इनमें प्रबल मारकता आ जाती है।

सप्तमेश यदि शुक्र हो तो स्वयं ही द्वितीयेश भी होता है। अतः दोनों ही मारक स्थानों का आधिपत्य प्राप्त होने से उसकी मारकेशता में सन्देह नहीं रह जाता है।

लेकिन गुरु यदि द्वितीयेश हो तो सप्तमेश शुक्र होगा या सूर्य होगा और गुरु सप्तमेश हो तो भी शुक्र द्वितीय मारकेश होता है। अतः गुरु या शुक्र मारकेश हों और कहीं पड़े हों तो भी वे मारक हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त यदि वे मारकेश 2, 7 स्थानों में हों तो उनकी मारकता बहुत बढ़ जाती है। इस प्रकार सभी द्वितीयेश व सप्तमेश मारकेश हैं तथापि गुरु व शुक्र बली मारक हैं।

यदि सप्तम मारक स्थान का स्वामी बुध हो तो वह गुरु शुक्र की अपेक्षा कम बली मारक होता है।

इसी प्रकार चन्द्रमा यदि मारकेश हो तो वह सब से कम मारक होता है। सप्तम स्थान बली मारक है। अतः उसी स्थान से पहले विचार करना चाहिए।

इस पद्धति से मारकेश ग्रहों का निर्णय कर अलग लिख देना चाहिए।

अब यह देखना शेष रहता है कि विचारणीय कुण्डली में निर्णीत द्वितीय, सप्तमेश, गुरु, शुक्रादि मारकेशों में से किसी एक के साथ या कई के साथ कौन से पापी ग्रह सम्बन्ध रखते हैं।

वे मारकेश सम्बन्धी पापग्रह भी मरणप्रद हो सकते हैं। यहाँ सम्बन्ध से चतुर्विध सम्बन्ध अभीष्ट नहीं है। सहस्थितिरूप सम्बन्ध ही अभीष्ट है क्योंकि मूल कारिका में 'संयुता:' शब्द का प्रयोग किया गया है।

इस प्रसंग में पापी ग्रह कौन होंगे? इस विषय में ध्यातव्य है कि पहले त्रिषडायेशों को पाप माना जा चुका है और अष्टमेश को महापापी।

पं. विनायक शास्त्री कहते हैं कि यहाँ सामान्यत: 'पाप' शब्द का प्रयोग न कर 'पापिन् शब्द का प्रयोग किया गया है। अत: पाराशर मत में सामान्यत: पापी माने जाने वाले त्रिषडायेशों को यहाँ पर नहीं लिया गया है, अपितु 'पापिन्' शब्द का अर्थ दोष विशिष्ट है। अत: स्वाभाविक पापी ग्रहों (मं. श. रा. पापबुध) आदि में जो नीचगत, शत्रुक्षेत्री, अस्तंगत, पापाक्रांत, स्वयं कई प्रकार से पापी अर्थात् स्वभावत: पापी होकर पाप भावों का भी अधिपति हो इत्यादि प्रकार के ग्रहों में से किसी एक का या कई का संयोग जब पूर्वोक्त मारकेशों से हो रहा हो तो वे संयुक्त ग्रह भी मारक हो जाते हैं।

यदि इन सब की दशान्तर्दशाओं में मरण सम्भव प्रतीत न होता हो तो लग्न से द्वादश स्थान के स्वामी का विचार करना चाहिए। यदि वह पापी, पापयुक्त, शत्रुक्षेत्रादिगत होरक मारक स्थान में स्थित हो तो उसकी दशा में भी मरण सम्भव है।

इस प्रकार किसी भी विचारणीय कुण्डली में मृत्युप्रद ग्रहों का निर्णय करते समय यह पद्धति अपनानी चाहिए।

(1) सप्तमेश ग्रह व वे पापी ग्रह जो इससे संयुक्त हों।

(2) द्वितीयेश व तत्संयुक्त पापी ग्रह।

(3) केन्द्रेश शुक्र व तत्संयुक्त पापी ग्रह।

(4) केन्द्रेश गुरु व तत्संयुक्त पापी ग्रह।

(5) पश्चात् व्ययेश व तत्संयुक्त पापी ग्रह।

(6) व्ययेश के सम्बन्धी ग्रह।

(7) केवल शुभ ग्रह जो नीचास्तंगत शत्रुक्षेत्रादि गत होकर मारक स्थान में स्थित हों।

(8) केवल पाप ग्रह।

(9) अष्टमेश। इसे नीचास्तंगतादि दोषयुक्त होना आवश्यक नहीं है।

हमारे विचार से मारकेशों का सम्बन्धी कोई भी पाप ग्रह हो अथवा अष्टमेश या व्ययेश हो तो अपनी दशादि में मृत्यु दे सकता है। यदि ये मृत्युप्रद ग्रह नीचास्तंगतादि में दोष से दुष्ट हों तो इनकी मारकता प्रबल हो जाती है।

इस प्रकार मारक ग्रह का निर्णय कर देखना चाहिए कि व्यक्ति की आयु में कब ये दशान्तर्दशाएं आएंगी। यदि आयु खण्ड समाप्त होता देखें तो मारक दशा मृत्यु देगी। लेकिन आयु खण्ड से पूर्व पड़ने वाली दशान्तर्दशाएं केवल रोग, शोक, कष्टादि देंगी।

यह आयु खण्ड क्या है? इस विषय में कहा जाता है कि सामान्यत: अल्पायु 32 वर्ष तक, मध्यायु 64 वर्ष तक व दीर्घायु 96 वर्ष तक मानी जाती है।

(1) जन्म लग्नेश यदि सूर्य का अधिमित्र या मित्र हो तो दीर्घायु, सम हो तो मध्यायु और अधिशत्रु हो तो अल्पायु होती है।

यदि सिंह लग्न हो तो इसी प्रकार विचार चन्द्रराशीश व सूर्य से करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त दीर्घायु व अल्पायु के योगों पर विचार करते समय सामान्यत: इन बातों पर विचार करें और जितने अधिक तथ्य मेल खाते हों उतनी ही आयु खण्ड में वृद्धि मान कर चलें। वृद्धि से तात्पर्य है कि मध्यायु 32 से 64 वर्षों तक के लम्बे समय तक है। यदि कोई 35 वर्ष की आयु पाता है वह भी और 60 वर्षों की आयु पाने वाला भी मध्यायु के अन्दर ही सिद्धान्तत: आएगा। तब वक्ष्यमाण सूत्रों में से जितने अधिक सूत्र मेल खाते हों तदनुसार आयु खण्ड में उत्तरोत्तर आगे चलेंगे।

आयु वृद्धि के उपकरण :

(1) लग्न-लग्नेश व चन्द्र चन्द्रराशीश का बली होना।

(2) उक्त चारों पर शुभ दृष्टि या शुभ युति।

(3) लग्नेश या चन्द्रेश का केन्द्र, त्रिकोण, द्वितीय, एकादश या अष्टम में होना।

(4) 3, 6, 11 में पाप ग्रह होना।

(5) लग्न में गुरु होना अथवा लग्न में गुरु चन्द्र योग।

(6) लग्नेश व अष्टमेश की एकत्र स्थिति या एकता।

(7) इनकी उच्च, मित्रराशि, स्वराश्यादि में स्थिति।

(8) लग्नेश, गुरु व शुक्र का 1, 2, 5, 9 या केन्द्र में होना।

(9) लग्नेश व अष्टमेश अधिमित्र हों, बली हों, शीर्षोदय राशि में हों।

(10) शुभ ग्रह (केन्द्रेश त्रिकोणेशादि) बलवान् हों।

सामान्यतः इन परिस्थितियों में आयु बढ़ती है। मनुष्य अच्छी आयु प्राप्त करता है। सरल बात यह है कि लग्न, लग्नेश, चन्द्र, गुरु, शुक्र पर जितना अधिक शुभ प्रभाव व बलयोग होगा तो आयु भी उतनी ही दीर्घ होगी। इसके विपरीत आयु क्षीण होगी।

आयु क्षीण करने वाले योग :

(1) लग्न, चन्द्र व तद्राशीशों पर पाप प्रभाव होना या इनकी निर्बलता होना।

(2) इनका अस्तंगत होना या 6, 8, 12 भावों में स्थित होना।

(3) मृत्युभागों या राशि सन्धि में जन्म होना।

(4) अपशकुनों में या कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्या में जन्म होना।

(5) मृत्युभावगत चन्द्र केन्द्र या अष्टम में पापयुक्त हो।

(6) केन्द्र, त्रिकोण व अष्टम में पापग्रह होना।

इन दोनों प्रकार के योगों के तालमेल से आयु का मोटा अनुमान मस्तिष्क में बिठाकर मरणदायिनी दशा का निश्चय करना चाहिए। मिश्र योगों में मध्यायु मानी जाएगी।

इस विषय में हमने सरल विस्तृत रूप में अपने **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य** में लिखा है। विशेष जिज्ञासु व बुद्धिमान् पाठक वहां से देख लें।

इसके अतिरिक्त जैमिनी मुनि ने भी लग्नेश-अष्टमेश, शनि व चन्द्रमा और लग्न, चन्द्रमा लग्न, होरा लग्न से आयु विचार बताया है। इसका विस्तृत विवेचन हमने **'जैमिनिसूत्र शान्तिप्रिय भाष्य'** में किया है।

संक्षेप में इनका मत भी मस्तिष्क में बिठा लेना चाहिए।

दीर्घायु	मध्यायु	अल्पायु
चर लग्नेश चर अष्टमेश	चर लग्नेश स्थिर अष्टमेश	चर लग्नेश द्विस्वभाव अष्टमेश
स्थिर लग्नेश द्विस्वभाव अष्टमेश	स्थिर लग्नेश चर अष्टमेश	स्थिर लग्नेश स्थिर अष्टमेश
द्विस्वभाव लग्नेश स्थिर अष्टमेश	द्विस्वभाव लग्नेश द्विस्वभाव अष्टमेश	द्विस्वभाव लग्नेश चर अष्टमेश

जो आयु तीन या दो प्रकार से मिले, वही ग्राह्य होती है। लेकिन तीनों प्रकार से अलग आने पर जन्म व होरा लग्न से प्राप्त आयु मान्य है।

पूर्वोद्धृत श्रीमती गांधी की कुण्डली में मोटा अनुमान लगाइए।

(1) सूर्य का अधिमित्र लग्नेश चन्द्र = दीर्घायु।

(2) लग्न लग्नेश चन्द्र चन्द्रेश की बलवत्ता = दीर्घायु।

(3) लग्नेश चन्द्रराशीश की केन्द्रस्थिति = दीर्घायु।

(4) लग्न पर पाप प्रभाव, चन्द्र पर पाप प्रभाव = आयुक्षय।

(5) केन्द्रत्रिकोण में निसर्ग पाप ग्रह = आयुक्षय।

अत: मोटा अनुमान दीर्घायु खण्ड 64 वर्ष के बाद शुरू में ही मृत्यु का संकेत देता है।

जैमिनीय मत से भी लग्नेश व अष्टमेश, शनि व चन्द्र और लग्न व चन्द्र तीनों ही चर राशि में हैं। अत: दीर्घायु प्रमाणित हो जाती है। अस्तु, 64 वर्ष के उपरान्त 96 वर्ष के मध्य में दीर्घायु खण्ड है। लेकिन कुछ स्थितियां आयु को घटाने वाली भी हैं, अत: खण्ड प्रारम्भ के 10-12 वर्षों के अन्दर ही मृत्यु सम्भव है।

अब मारक ग्रह को देखिए। जन्म समय सूर्य की दशा थी। सूर्य द्वितीयेश होकर भी प्रबल मारक नहीं है। शनि की दशा इन्हें फरवरी 1970 में चली थी। शनि के मारकत्व में संदेह नहीं है–

(1) शनि सप्तमेश है और लग्न चन्द्रमा पर पूरा प्रभाव जमाए है।

(2) शनि की दशा आयु खण्ड के अनुसार भी मारक सिद्ध होती है।

शनि मारकेश होकर स्वयं ही अधिपति बन जाता है तथा अपने सम्बन्धी अन्य मारक ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु देता है। अतः इनकी अन्तर्दशा में मरण नहीं हुआ।

मंगल यद्यपि निसर्ग पापी है और वह मारक स्थान में स्थित है तथापि कर्क लग्न वालों के लिए परम कारक है। अतः मृत्यु न हुई। अतः सितम्बर 83 से जुलाई 86 के मध्य राहु की अन्तर्दशा में मरण सिद्ध होता है तथा ऐसी ही वास्तविकता भी है। इनका निधन 31 अक्टूबर 1984 को हो गया था।

राहु स्वभावतः पापी है। षष्ठ में बैठकर कारक भी नहीं है। केन्द्रेश शुक्र से युत है। इससे अगली अन्तर्दशा त्रिकोणेश गुरु की होती जो मारक न थी। अतः राहु की दशा में मृत्यु हुई।

यदि मारक दशा कदाचित् मध्यायु खण्ड में पड़ती तो मारक न होती। ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिए।

अन्य मारक ग्रह :

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशासु च॥ 26॥

यदि पूर्वोक्त मारक ग्रहों की दशा आयु खण्ड में प्राप्त न होती हो अर्थात् द्वितीयेश, सप्तमेश, इनसे संयुक्त पापग्रह, मारक स्थानगत पापग्रह और लग्न से व्ययेश इन सबकी दशा प्राप्ति आयु खण्ड में सम्भव न हो तो व्ययेश से अर्थात् अष्टम के व्ययेश (सप्तमेश) के सम्बन्धी ग्रहों की अथवा द्वितीयेशादि ग्रहों (पूर्वोक्त मारक ग्रह) के सम्बन्धी ग्रहों की दशान्तर्दशाओं में मृत्यु कहनी चाहिए।

इनकी सम्भावना न होने पर अष्टमेशादि पापग्रहों की दशा में, मरण कहना चाहिए।

अन्यथा नीचास्तंगतादि दोषयुक्त शुभ ग्रहों की दशा में मरण सम्भव है।

इन पंक्तियों का अर्थ बड़ा गहरा है। अतः स्थिर चित्त से समझिए। पाराशर मत में 'पाप' शब्द की व्याख्या कई प्रकार से की जा सकती है। पहले तो निसर्गतः कुछ ग्रह पापी होते हैं और कुछ शुभ। जैसे मंगल, शनि, राहु, सूर्य क्षीण चन्द्र व पापयुक्त बुध स्वभावतः ही पापी हैं और शेष ग्रह निसर्ग शुभ हैं।

पहले कहा जा चुका है कि योगफल अर्थात् जीवन में भौतिकादि पदार्थों की उपलब्धि के विषय में शुभ भावों के अधिपति शुभ होते हैं और अशुभ भावों के अधिपति अशुभ होते हैं। इस सन्दर्भ में शुभ अर्थात् उपलब्धि कराने वाले और अशुभ अर्थात् शुभ फल न देने वाले।

अब योगफल व मारकत्व ये दो अलग बाते हैं। किसी एक ही ग्रह में शुभ फल देने की शक्ति व मारकत्व साथ-साथ रह सकते हैं। ये फल परस्पर विरोधी होते हुए भी एक-दूसरे को नहीं काटते। अर्थात् ये ग्रह दोनों फल देने की सामर्थ्य रखते हैं।

इस मारक प्रसंग में यदि हम ऐसा न मानें तो कल्पना कीजिए कर्क लग्न में उत्पन्न जातकों का शनि सप्तमेश व अष्टमेश होता हुआ प्रबल मारक होगा। लेकिन बहुत से इस लग्नोत्पन्न जातकों को शनि की दशा आयुखण्ड में बहुत पहले ही आ जाएगी तब वे आगे कैसे जीवित रहेंगे, जबकि लोक में ऐसा प्रतीत नहीं होता है। अतः मारक ग्रह का निर्णय बड़ी सूक्ष्म ऊहापोह के साथ करना होगा। मारक ग्रह का निर्णय तलवार की धार पर चलना है।

अस्तु, मारक अर्थात् मृत्यु देने वाला होने के कारण यह ग्रह सबसे अधिक पापी होना चाहिए। मारक होने के लिए ग्रह में पापत्व का संस्पर्श परमावश्यक है।

पापत्व क्या है? मारक स्थान में पड़ना, मारकेशों के साथ रहना, नीचगत होना, अस्त होना, अन्य भावानुसार पापी ग्रहों से युक्त होना, इन पापी ग्रहों से 8, 12, 11, 6, 3 भावेशों से युक्त या आक्रान्त होना, शत्रु क्षेत्री होना आदि अवगुण पाप कहलाते हैं। अतः इस प्रसंग में पापी ग्रह से इसी अर्थ का ग्रहण अभीष्ट है।

इस प्रसंग में तीन स्थान व्ययस्थान माने गए हैं। अष्टम का व्यय स्थान अर्थात् सप्तम प्रबलतम मारक है।

अष्टम से अष्टम (तृतीय) का व्यय स्थान अर्थात् द्वितीय प्रबलतर मारक है।

लग्न से व्यय स्थान प्रबल मारक है। इसका उल्लेख कारिकाओं में 'साक्षाद् व्ययाधीश' कहकर किया गया है, जबकि शेष दोनों व्ययेशों को 'व्ययेशितृ' पद से अभिहित किया गया है।

अब मारक विचार का क्रम समझिए–

तदीशितुस्तत्रगताः

(1) सर्वप्रथम सप्तमेश को देखिए, फिर द्वितीयेश को, फिर केन्द्राधिपति के दोषी शुक्र को, फिर केन्द्रेश गुरु को, फिर द्वादशेश को देखिए।

(2) इन पूर्वोक्त ग्रहों में से जो मारक स्थानों में पड़े हों, वे सर्वप्रथम मारक होते हैं।

पापिनः

(3) यदि ये ग्रह मारक स्थानों में न पड़े हों तो इनके मारकत्व के लिए और पापत्व होना आवश्यक है। अतः इन ग्रहों में से जो मारकस्थान में हो वह प्रथम श्रेणी का मारक, जो अन्यत्र बैठकर नीचगत हो वह द्वितीय श्रेणी का तत्पश्चात् अस्तंगत, पुनः पापी भावेशों से युक्त, पुनः पापी भावेशों से पीड़ित, पुनः शत्रु क्षेत्रगत ग्रहों को क्रमशः रखिए। उनमें से जो ग्रह कई दोषों से युक्त हो वह अधिक मारक और कम दोषयुक्त कम मारक होगा।

साक्षाद् व्ययाधीश दशास्वपि

(4) यदि इन सभी पूर्वोक्त मारकों की दशा आयु खण्ड में न पड़ती हो तो द्वादशेश यदि मारक स्थानों में बैठा हो तो मारक होगा। अथवा अन्यत्र होने पर वह व्ययेश उक्त नीचास्तंगतत्वादि दोष से युक्त हो तो मारक होगा।

तेन संयुताः

इन सभी मारक ग्रहों की दशादिक की सम्भावना आयु खण्ड में न दिखाई पड़े तो इस क्रम से विचार कीजिए–

(1) सप्तमेश के साथ पड़े ग्रह जो मारक स्थान में हों या नीचास्तंगतत्वादि पूर्वोक्त दोषों से युक्त हों।

(2) फिर द्वितीयेश से युत ग्रह जो मारकस्थिति या नीचास्तंगतत्वादि से दुष्ट हों।

(3) इसी प्रकार केन्द्रेश गुरु शुक्र के साथ स्थित ग्रह जो उक्त प्रकार से स्थित हों।

(4) फिर द्वादशेश के साथ स्थित ग्रह जो पूर्वोक्त प्रकार से स्थित हों।

इनमें से जिसकी दशा आयु खण्ड में पड़े वही गुरुमारक होगा। यदि आयु खण्ड में कई ग्रहों की दशा आती हो तो मारकों के बलाबल के आधार पर बली मारक की दशा को मरणप्रद समझना चाहिए।

सम्बन्धेन व्ययेशितुः :

यदि इनकी भी दशा आयु खण्ड में न पड़ती हो तो इस पद्धति व क्रम से निर्णय करें–

(1) सप्तमेश के सम्बन्धी (चतुर्विध सम्बन्ध) ग्रह जो मारक स्थान में स्थित हों अथवा नीचास्तंगतत्वादि दोष से युक्त हों।

(2) फिर द्वितीयेश के सम्बन्धी ग्रह जो उक्त प्रकार से स्थित हों।

(3) फिर केन्द्रेश गुरु शुक्र के सम्बन्धी ग्रह जो उक्त प्रकार से स्थित हों।

(4) फिर द्वादशेश के सम्बन्धी ग्रह जो उक्त प्रकार से स्थित हों।

अष्टमेशदशासु च :

यदि इस प्रकार की मारक दशा आयु खण्ड में न पड़ती हो तो इस क्रम को अपनाएं–

(1) अष्टमेश यदि मारक स्थान में हो अथवा अन्यत्र बैठकर नीचास्तंगतत्वादि दोष युक्त हो।

(2) फिर लाभेश यदि मारक स्थान में हो या नीचास्तंगतत्वादि दोष से दूषित हो।

(3) फिर षष्ठेश की मारक स्थिति या नीचास्तंगतत्वादि दोषदुष्टता को देखिए।

(4) फिर तृतीयेश की उक्त स्थिति का विचार कीजिए।

क्वचिच्छुभानां च :

यदि इस प्रकार भी मारक दशा का निर्णय न हो पाए तो इस पद्धति का अवलम्बन करें–

(1) कोई भी शुभ ग्रह जो मारक स्थान में स्थित हो।

(2) कोई भी शुभ (त्रिकोणेशों सहित) ग्रह जो नीचास्तंगतत्वादि दोष से युक्त हो।

केवलानां च पापानाम् :

उक्त विधियों से भी निर्णय न होने पर इस वक्ष्यमाण पद्धति को अपनाएं–

(1) केवल अष्टमेश, चाहे कहीं भी हो और उच्चगत भी क्यों न हो। यही केवल शब्द का आशय है, अर्थात् केवल भावेशत्व से पापी होना।

(2) केवल एकादशेश।

(3) केवल षष्ठेश।

(4) केवल तृतीयेश।

इन सब पद्धतियों का सिलसिलेवार अवलम्बन करना चाहिए। यही विषय अगली कारिका में बताया जा रहा है।

केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित्।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने।। 27।।

यदि उक्त प्रकार से भी मारक का निर्णय न हो तो केवल पापी अर्थात् अष्टमेश, एकादशेश, षष्ठेश, तृतीयेश की दशाओं में मरण होता है।

इस प्रकार क्रमशः मारक दशा प्राप्त न होने पर विद्वानों को पहले बताई गई उत्तरोत्तर पद्धतियों में उत्तरोत्तर निर्बलता है। अर्थात् जिस क्रम से पद्धतियां बताई गई हैं, उसी क्रम से देखकर आगे बढ़ना चाहिए। यदि पहली पद्धति से ही मारक दशा प्राप्त होती हो तो फिर आगे नहीं जाना चाहिए।

शनि की विशेष मारकता :

मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः॥ 28॥

यदि पापी शनि पूर्वोक्त मारकों से सम्बन्ध करता हो तो वह सभी पूर्वोक्त व नियमतः सिद्ध मारकों को पीछे हटाकर स्वयं ही मारक हो जाता है, इस विषय में सन्देह नहीं है।

शनि सभी मारक ग्रहों में प्रबल है। यदि शनि मारक है तो शेष मारकों के विचार की आवश्यकता ही नहीं है। 'हाथी के पांव में सबका पांव'। अतः शनि सबसे बढ़कर विशिष्ट मारक है। जिस प्रकार राजा की अनुपस्थिति में प्रधान मन्त्री या सचिव आदि कार्य चलाते हैं, वे ही कार्यवाहक राजा बन जाते हैं और राजा के आने पर वे मन्त्री लोग राजा के कार्य को छोड़कर अपना सामान्य काम ही करते हैं, अर्थात् स्वात्म कार्यरत हो जाते हैं। उसी प्रकार शनि यदि मारकेशों से सम्बन्ध न रखे तो जो सर्वाधिक बली मारक है, वही मृत्यु देगा; लेकिन शनि, चाहे कम कारकत्व वाला भी क्यों न हो, यदि मारकों से सम्बन्ध करता हो तो वह स्वयं ही मृत्यु देगा।

इस प्रकार सभी मारकों को हटाकर स्वयं मारक बनने के लिए शनि को स्वयं पापी होना आवश्यक है। पापी से तात्पर्य है कि शनि यदि केवल केन्द्रेश त्रिकोणेश आदि हो तो वह पापी न होगा, लेकिन त्रिकोणेश या केन्द्रेश होकर यदि वह त्रिषडायेश भी होगा तो पापकारी माना जाएगा। ऐसा पापकृत् शनि स्वयं मारक न भी हो, लेकिन मारकों से सम्बन्ध करे तो स्वयं मृत्युप्रद हो जाएगा। जितना अधिक बली सम्बन्ध होगा, उतना ही अधिक मारकत्व उसे प्राप्त हो जाएगा।

यदि शनि स्वयं मारक हो तो इसके मारकत्व में सन्देह ही क्या होगा?

यदि शनि सप्तमेश के साथ अष्टमेश (पापतम) भी हो तो वह स्वयं मारक है, इसमें क्या सन्देह रहेगा।

यदि वह मारक स्थान में स्थित हो तो प्रबल मारक होगा या नीचास्तंगतादि मारकों से जितना अधिक सम्बन्ध रखेगा, उतना ही अधिक मारक होता जाएगा।

शनि यद्यपि स्वयं पापी है तथापि वह मारकेश हो या मारक सम्बन्धी हो तो निश्चय से मारक होगा, ऐसा ग्रन्थकार का आशय है।

राहु व केतु के मारकत्व के विषय में यहाँ नहीं बताया गया है। सुश्लोक शतककार लिखते हैं–

राहुश्चेदथवा केतुर्धने कामे व्ययाष्टमे।
मारकेशान्मदे वापि मारकेशेन वा युतः॥
मारकः स तु विज्ञेयो दशास्वन्तर्दशासु च।
त्रिषडायेऽपि कष्टाय पापसम्बन्धकृत्तया॥

राहु या केतु 2, 7, 8, 12 स्थानों में अथवा मारकेश से सप्तम स्थान में बैठा हो अथवा मारकेश से युक्त हो तो वह अपनी अन्तर्दशा में मारक हो जाता है।

यदि 3, 6, 11 में स्थित राहु पापी ग्रहों से सम्बन्ध करे तो भी मारक हो जाता है।

ध्यान रखिए, मारकेश की दशा की अपेक्षा आयु खण्ड को महत्त्व देना चाहिए। यदि मध्यायु खण्ड वाले व्यक्ति की मारक दशा 30 वर्षों से पूर्व ही आए तो मृत्युप्रद न होकर कष्टप्रद ही होगी। इस विषय को एक नए उदाहरण से समझाने का प्रयास करते हैं। आगे **पं. मुकन्द दैवज्ञ पर्वतीय** की कुण्डली दी जा रही है। इनके 20 से अधिक मौलिक ज्योतिष ग्रन्थ प्रसिद्ध ही हैं। आपका जन्म सं. 1944 तुला संक्रान्ति के 24 दिन बीतने पर मंगलवार, आश्लेषा नक्षत्र सूर्योदयादिष्ट काल 3.57 घड़ी, वृश्चिक लग्न में हुआ था। इन्होंने 92 वर्ष की आयु पाई थी।

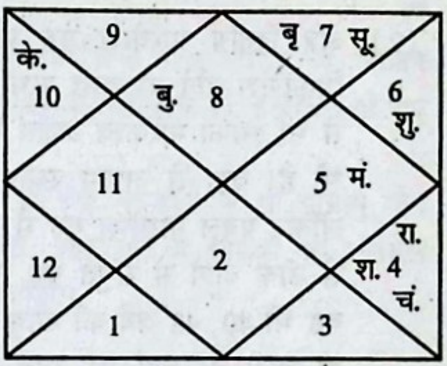

इष्टकाल–3.57 घट्यादि
होरा लग्न–8, 11°, 24'
आश्लेषा जन्म नक्षत्र
सर्वप्रथम आयु खण्ड का विचार करते हैं–

(1) लग्नेश मंगल सूर्य का अधिमित्र = दीर्घायु

(2) लग्न में शुभ प्रभाव, लग्नेश बली=दीर्घायु

(3) चन्द्रमा स्वक्षेत्री व त्रिकोणेश=दीर्घायु

जैमिनी मत से लग्नेश स्थिर व अष्टमेश स्थिर राशि में है। अतः अल्पायु योग है। लग्न स्थिर व होरा लग्न द्विस्वभाव होने से दीर्घायु योग है। शनि व चन्द्र चर राशि में होने से दीर्घायु और लग्न चन्द्र क्रमशः स्थिर चर में होने से मध्यायु होती है। 'संवादात्प्रामाण्यम्' सूत्र से दीर्घायु योग अधिक प्रबल है। जैमिनी सूत्र के मत से आयु खण्ड 108 वर्ष आता है। अतः दीर्घायु होने में कोई सन्देह नहीं रहता है।

अब मारक का निर्णय करेंगे। इनका जन्म बुध की महादशा में हुआ था।

(1) प्रथम सप्तमेश शुक्र को मारकत्व प्राप्त है। यह मारकत्व लग्न से व्ययेश होने के कारण और बढ़ जाता है। साथ ही शुक्र केन्द्रेश होकर नीच राशि में है। अतः इसका पापत्व और भी बढ़ जाता है। इन सब कारणों से इसे मारक मानना युक्तियुक्त है। लेकिन शुक्र की दशा इन्हें लगभग 35 वर्ष की अवस्था में समाप्त हो जाती है, जबकि इनकी आयु दीर्घ सिद्ध हुई है। अतः शुक्र की दशा में मरण अल्पायु योग में ही सम्भव है। अतः शुक्र की दशा में मरण नहीं हुआ, जबकि इसे प्रबल मारकत्व प्राप्त था। शुक्र से संयुक्त कोई ग्रह नहीं है, अतः इस स्थिति पर विचार नहीं किया गया है। साथ ही शुक्र का सम्बन्ध भी किसी ग्रह से नहीं बैठ रहा है, अतः सम्बन्धी की दशा में भी मरण सम्भव नहीं है।

(2) अब द्वितीय मारकेश गुरु पर विचार करना चाहिए। गुरु त्रिकोणेश होने पर कुछ शुभ भी है, लेकिन त्रिकाणेश होने से भी इसका मारकत्व अक्षत रहता है। गुरु कदाचित् अस्तंगत भी है। वहां से अष्टम स्थान पर पूर्ण दृष्टि भी रखता है। लेकिन प्रबल मारकेश गुरु से पहले और प्रथम मारकेश शुक्र से ठीक आगे से संयुत ग्रह सूर्य की दशा आती है। लेकिन वह भी 40, 42 वर्ष की आयु में ही (मध्यायु खण्ड) समाप्त हो जाती है। वहाँ पर आयु खण्ड समाप्त नहीं था। अतः जीवन बना रहा। अतः बृहस्पति की दशा में ही मरण सम्भव है। यह दशा लगभग 79 वर्ष की आयु में प्रारम्भ होती है तथा 95 वर्ष तक जाती है। इसी दशा में 91 वर्ष की आयु में इनका मरण हुआ था। उस समय गुरु में शुक्र या सूर्य की अन्तर्दशा में देहान्त हो गया। पं. मुकुन्द दैवज्ञ ने आयुर्निर्णय (संस्कृत अभिनव भाष्य समेत) पृ. 136 श्लोक में कहा है कि लग्न में बुध हो, चन्द्रमा नवम व पंचम में हो तो 87 वर्ष की आयु होती है। इस प्रकार योगायु प्रकार से भी लगभग लम्बी आयु सिद्ध होती है।

अतः हमारा सुझाव है कि मारक ग्रह के साथ आयु खण्ड का विचार अवश्य करना चाहिए। कर्क लग्न वालों को शनि पापतम होता है। तब मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य आदि नक्षत्रों में जन्मे व कर्क लग्न वाले शनि की दशा शीघ्र ही आने पर अल्पायु ही होंगे। लेकिन हमारे अध्ययन में ऐसी कुण्डलियां आई हैं जो कर्क लग्न में उत्पन्न होकर भी अच्छी आयु में जी रहे हैं या अच्छी आयु पाई है। रामानुजाचार्य, लोकमान्य तिलक, जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गांधी आदि कर्क लग्न के जातक थे, तथापि अच्छी आयु पाकर ही शरीरान्त हुआ। केवल आदि शंकराचार्य की जन्म कुण्डली (यथोपलब्ध) में इसका अपवाद देखने में आता है। कर्क लग्न में बृहस्पति है, चन्द्रमा वृषभ में उच्चगत है, शनि चतुर्थ में उच्चगत है। मारकेश सूर्य दशा में उच्चगत है। ज्योतिष के सभी मान्य ग्रन्थों के आधार पर समवेत ढंग

से भी चलें तो इनकी आयु का विस्तार श्रेष्ठ होना चाहिए था, लेकिन लोक प्रसिद्धि के अनुसार ये 32 वर्ष की आयु में ही ब्रह्मलीन हो गए थे।

पीछे उद्धृत स्वामी करपात्री जी की कुण्डली में भी दीर्घायु योग देखा जा सकता है। अतः सामान्यतः आयुखण्ड व दशाओं का तालमेल बिठाकर ही भविष्यवाणी करनी चाहिए।

॥ इत्युडुदायप्रदीपे लघुपाराशर्यां पं. सुरेशमिश्रकृतायां विद्याधरी-हिन्दीव्याख्यायां मारकाध्यायश्चतुर्थः॥

5 दशाफलाध्यायः

दशाफल का विशेष नियम :

न दिशेयुर्ग्रहाः सर्वे स्वदशासु स्वभुक्तिषु।
शुभाशुभफलं नृणामात्मभावानुरूपतः॥ 29॥
आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम्॥ 30॥

सभी ग्रह अपनी महादशा में जब अपनी अन्तर्दशा आती है, तब अपना शुभ, पाप या मारक फल नहीं देते हैं। इस स्थिति में वे अपना सामान्य फल ही दिखाते हैं।

अपना उत्कट शुभ, अशुभ या मारक फल वे अपनी महादशा में, अपने सम्बन्धी ग्रह की या अपने समानधर्मा शुभाशुभ योगकारक की अन्तर्दशा में ही देते हैं।

अभी तक लघुपाराशरी का हम जितना अध्ययन कर चुके हैं, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि योगकारक ग्रह अपनी महादशा में, अपना योगफल देगा।

अशुभ ग्रह भी अपनी महादशा में अपना अशुभ फल दिखाएगा और मारक ग्रह भी अपनी महादशा में ही अपना भीषण फल देगा। यह एक निश्चित नियम है।

अब प्रश्न यह है कि महादशा की अवधि बहुत लम्बी होती है। तब शुभ, अशुभ, मारकादि ग्रहों का फल पूरी दशा की अवधि में तो मिलना

सम्भव प्रतीत नहीं होता। अतः इन कारिकाओं में महादशा के अन्दर आने वाली अन्तर्दशाओं के फल निर्णय का विवेक किया जा रहा है।

कल्पना कीजिए, किसी कुण्डली में बृहस्पति बहुत अच्छा योगकारक ग्रह सिद्ध हुआ है। अब बृहस्पति की दशा 16 वर्षों के लम्बे समय तक चलेगी। यह एक निश्चित नियम यहाँ बताया गया है कि बृहस्पति का श्रेष्ठ फल अपने पूरे दशा काल में एक जैसा नहीं मिलेगा।

सर्वप्रथम हमें ग्रहों का विभाग इस प्रकार अपने मस्तिष्क में बिठा लेना चाहिए। माना बृहस्पति योगकारक है। अब अन्य योगकारक ग्रहों का एक वर्ग बना लीजिए।

दूसरा वर्ग ऐसे ग्रहों का बना लीजिए जो योगकारक तो नहीं हैं, परन्तु भावेशत्वादि के आधार पर शुभ हैं।

तीसरा वर्ग पापग्रहों का रहेगा, अर्थात् उन ग्रहों का ग्रहण इस तृतीय वर्ग में रहेगा जो ग्रह भावेशत्वादि के आधार पर अशुभ फल देने वाले होंगे।

चौथा वर्ग उन ग्रहों का बनेगा जो स्वतन्त्र रूप से मारक सिद्ध होते हों।

इस प्रकार ग्रहों का शुभ, अशुभ, मारक व योगकारक रूप में चतुर्विध वर्ग बना लेना आवश्यक है। अब इन सभी ग्रहों का महादशेश से सम्बन्ध विचार करना होगा। इस प्रकार अन्तर्दशाओं का फल निर्णय किया जाएगा–

(1) किसी भी ग्रह में उसी की अन्तर्दशा अपना विशेष फल नहीं देगी–चाहे वह ग्रह योगकारक हो या मारक हो। यदि योगकारक है तो भी अपना विशेष योग फल न देगा और वह मारक हो तो अपना विशेष मारकत्व नहीं दिखाएगा।

(2) योगकारक ग्रह की दशा में जब-जब योगकारकों की अथवा सामान्यतः शुभ ग्रहों की अथवा अपने सम्बन्धितों की अन्तर्दशा आएगी तभी वह अपना उत्तम फल दिखाएगा।

(3) यदि मारक ग्रह की महादशा हो तो उसमें उसी ग्रह की अन्तर्दशा मरण कारक नहीं होगी।

(4) जब मारक ग्रह की दशा में अन्य मारक ग्रहों की अन्तर्दशा या अपने सम्बन्धी ग्रहों की अन्तर्दशा आएगी तभी मारकत्व का विशेष फल देखने को मिलेगा।

(5) कारक ग्रह में मारक ग्रह की अन्तर्दशा सामान्यतः शुभाशुभ मिश्रित फल देगी। इसी प्रकार मारक ग्रह में कारक ग्रह की अन्तर्दशा भी सामान्य मिश्रित फल देगी।

(6) इन सभी अन्तर्दशाओं में भी जो ग्रह अधिक बड़ा सम्बन्धी होगा या अधिक श्रेष्ठ मारक या कारक होगा, उसी की अन्तर्दशा में महादशेश का उत्तम फल मिलेगा। उदाहरणार्थ योगकारक की महादशा में प्रबल योगकारक की अन्तर्दशा= अत्यन्त श्रेष्ठ फल। मारक की महादशा में प्रबल मारक की अन्तर्दशा=अत्यन्त अनिष्ट फल।

(7) सम्बन्ध व साधर्म्य ये दो तत्त्व ही अन्तर्दशाओं के निर्णायक हैं। अतः योगकारक ग्रह की महादशा में सम्बन्धित पापी या मारक की अन्तर्दशा भी अत्यन्त अशुभ नहीं होगी। इसी प्रकार मारक की महादशा में संबंधित शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में सामान्य शुभ फल ही मिलेगा।

आशय यह है कि महादशेश का स्वाभाविक फल व अन्तर्दशेश का स्वाभाविक फल जब समान हो तो उस समय में उत्कृष्ट फल मिलेगा–चाहे वह शुभ या अशुभ कैसा भी क्यों न हो।

यदि महादशेश का स्वाभाविक फल व अन्तर्दशेश का स्वाभाविक फल परस्पर विरोधी हो तो उस समय में शुभ+अशुभ=सामान्य फल ही मिलेगा। अर्थात् न अधिक अशुभ और न ही अधिक शुभ। इस प्रकार दशान्तर्दशाओं के फल का तारतम्य बिठा लेना चाहिए।

इस प्रसंग में हम बताई गई कारिका 18-19 को भी याद दिलाना चाहते हैं। वहाँ बताए गए नियम यहाँ भी मान्य हैं। वहाँ बताया गया था कि दो शुभ या अशुभ फल देने वाली अन्तर्दशाओं के बीच में पड़ने वाली सामान्य अन्तर्दशा में भी शुभ या अशुभ जैसा भी फल हो, वैसा ही फल मिलता रहता है।

सम ग्रह की अन्तर्दशा का फल निर्णय :

इतरेषां दशानाथविरुद्धफलदायिनाम्।
तत्तत्फलानुगुण्येन फलान्यूह्यानि सूरिभिः॥ 31॥

जो ग्रह महादशेश के सम्बन्धी नहीं हैं और महादशेश के समान भी नहीं हैं, उनकी अन्तर्दशाओं में दोनों का ही मिश्रित फल विद्वानों को यथावसर बताना चाहिए।

सभी ग्रहों का विभाग महादशापति को दृष्टि में रखकर दो प्रकार का माना जा सकता है–

(1) सम्बन्धी ग्रह, (2) असम्बन्धी ग्रह।

ये दोनों प्रकार के ग्रह 3-3 भेद वाले हो जाते हैं–

(1) समान धर्म वाले (सधर्मी), (2) विरोधी धर्म वाले (विरुद्धधर्मी) (3) सम धर्म वाले अर्थात् न विरोधी, न समान अर्थात् (अनुभयधर्मी)।

पिछली कारिकाओं में बताया गया है कि ग्रह अपना शुभ या अशुभ फल इन अन्तर्दशाओं में इस प्रकार देगा–

(1) अपनी महादशा में सम्बन्धित सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा। (उत्कृष्ट फल)

(2) अपनी महादशा में सम्बन्धित अनुभयधर्मी की अन्तर्दशा। (मध्यम फल)

(3) अपनी महादशा में सम्बन्धित विरुद्धधर्मी की अन्तर्दशा। (सामान्य फल)

(4) अपनी महादशा में असम्बन्धित सधर्मी की अन्तर्दशा। (उत्कृष्ट फल)

(5) अपनी महादशा में सम्बन्धित अनुभयधर्मी की अन्तर्दशा। (मिश्रित फल)

(6) अपनी महादशा में असम्बन्धित विरुद्धधर्मी की अन्तर्दशा। (मिश्रित फल)

अतः सम्बन्धी व सधर्मी ग्रहों की अन्तर्दशाओं में तो महादशेश का अपना फल मिलता है। लेकिन जो ग्रह अनुभयधर्मी हैं अर्थात् न तो

सम्बन्धी हैं और न ही सधर्मी हैं, उनकी अन्तर्दशाओं में मिश्रित फल जातकों को मिलता है, यही फलानुगुणता है। अर्थात् योगकारक की महादशा में असम्बन्धित व अनुभयधर्मी की अन्तर्दशा पहले शुभ व बाद में सम फल देगी।

मारक की महादशा में अनुभयधर्मी की अन्तर्दशा पहले अशुभ फल देकर बाद में सम फल देगी। यही फलानुगुण्य अर्थात् मिश्रित फल देने का नियम है।

दशान्तर्दशाओं का सारा फल सम्बन्ध, सधर्म व फलानुगुणता पर ही आधारित है, ऐसा पाराशरी का मत है। पहले सम्बन्ध व सधर्म की व्याख्या कर चुके हैं। पुनः स्थूणाभिखनन न्याय से संक्षिप्त सिंहावलोकन अनावश्यक न होगा। सम्बन्ध चतुर्विध होता है–

(1) क्षेत्र सम्बन्ध अर्थात् जब ग्रह परस्पर एक-दूसरे की राशि में हों।

(2) दृष्टि सम्बन्ध अर्थात् दोनों ग्रह परस्पर एक-दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखते हों। एक ग्रह देखे और दूसरा न देखे तो यह सम्बन्ध नहीं होगा। दोनों की एक-दूसरे पर पूर्ण दृष्टि आवश्यक है।

(3) स्थानस्थित दृष्टि सम्बन्ध अर्थात् जब कोई ग्रह अपनी राशि में स्थित ग्रह को पूर्ण दृष्टि से देखता हो, जैसे वृश्चिक गत शनि मकरगत बुध को पूर्ण दृष्टि से देखेगा।

(4) सहावस्थान संबंध अर्थात् जब कोई दो ग्रह एक स्थान में स्थित हों।

इन चारों संबंधों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता घटती जाती है। सधर्म शब्द से तात्पर्य है जो अपने जैसा हो। जैसे एक त्रिकोणेश दूसरे त्रिकोणेश का सधर्मी है; क्योंकि वे दोनों ही शुभ होते हैं। इसी प्रकार द्वितीयेश सम व द्वादशेश भी सम होने के कारण सधर्मी कहलाएंगे। 3, 6, 11 स्थानेश परस्पर सधर्मी होंगे। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए। फलानुगुणता का अर्थ है–समीपता अर्थात् लगभग फल होना, निकटवर्ती फल होना। फल की अनुगुणता से तात्पर्य हुआ, जो फल नियमतः सिद्ध होता हो, वैसा ही ठीक फल न होकर उसके लगभग शुभ या अशुभ फल होना। उदाहरणार्थ एक ग्रह अशुभ है और एक ग्रह सम। तब न तो बिल्कुल अशुभ फल

ही होगा और न ही बिल्कुल सम। अर्थात् दोनों ही फल यथाक्रम थोड़े-थोड़े मिलेंगे। इसे ही फलानुगुण्य कहते हैं। इस प्रकार अपने मस्तिष्क में समग्र विषय को स्थापित कर लेना चाहिए।

केन्द्रेश व त्रिकोणश की दशा का फल :

स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तौ केन्द्रपतिः शुभम्।
दिशेत् सोऽपि तथा नोचेदसम्बन्धेन पापकृत्॥ 32॥

केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा और त्रिकोणेश की महादशा में केन्द्रेश की अन्तर्दशा शुभ होती है। यह सामान्य नियम है। यदि दोनों में परस्पर सम्बन्ध हो तो विशेष शुभ फल होता है। सम्बन्ध न हो तब भी शुभ फल होता है। यदि केन्द्रेश या त्रिकोणश में कोई दोष हो, अर्थात् वे साथ ही अशुभ भावेश भी हों या शुभ केन्द्रेश हों तो उनकी दशान्तर्दशा में सम्बन्ध रहने पर सामान्य शुभ फल और सम्बन्ध न रहने पर अशुभ फल होता है।

इस कारिका का अर्थ बड़ा गूढ़ है। विद्वानों ने इस कारिका के अर्थ में बड़ी उहापोह की है। केन्द्रेश त्रिकोणेश का सम्बन्ध योगकारक है, यह एक निर्भ्रान्त सिद्धान्त है। साथ ही कहा गया है कि योगकारक ग्रह की महादशा में दूसरे योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा हो तो अवश्य शुभ फल होगा। अतः केन्द्रेश व त्रिकोणेश की दशा-अन्तर्दशा परस्पर अवश्य ही योगकारक होगी। इस विषय में कोई सन्देह का अवसर होना ही नहीं चाहिए।

यदि केन्द्रेश व त्रिकोणेश परस्पर सम्बन्ध रखते हों, लेकिन वे स्वयं दोषी हों तो शुभ फल के तारतम्य में कुछ उतार अवश्य हो जाएगा, यह बात तर्क सिद्ध है। इनके दोष से तात्पर्य है–यथा केन्द्रेश साथ ही साथ अशुभ स्थानों का स्वामी हो। जैसे दशमेश व एकादशेश शनि अथवा सप्तमेश होकर षष्ठेश या अष्टमेश हो इत्यादि। तब वह केन्द्रेश दोषयुक्त माना जाएगा, सर्वथा दोषी नहीं। इसी प्रकार त्रिकोणेश भी यदि साथ-साथ त्रिषडायेश हो तो वह भी कुछ-कुछ दोष युक्त होगा, जैसे कर्क लग्न में षष्ठेश व नवमेश बृहस्पति। इस विषय में पीछे कारिका 15 व 22 की व्याख्या में विस्तार से विवेचन किया जा चुका है।

इस विषय में भी पीछे कारिका 15 में ही बताया गया है कि केन्द्रेश व त्रिकोणेश यदि दोषयुक्त भी हों तो भी परस्पर सम्बन्ध मात्र से वे बलवान् होकर योगकारक होंगे। अतः निर्दोष केन्द्रेश व निर्दोष त्रिकोणेश का परस्पर सम्बन्ध हो तो वे परस्पर अपनी अन्तर्दशा में परम शुभ फल प्रदान करेंगे। यदि एक दोषी होगा तो शुभ फल में ह्रास होगा और दोनों दोषी होंगे तो शुभ फल सामान्य फल में परिवर्तित हो जाएगा। इस तारतम्य को समझकर, निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं–

(1) केवल पापी केन्द्रेश, केवल त्रिकोणेश से परस्पर सम्बन्ध करें तो उनकी परस्पर दशान्तर्दशा अत्यन्त उत्तम फल देने वाली होगी। केवल से तात्पर्य है जो अशुभ भावेश भी न हो।

(2) यदि पापी केन्द्रेश साथ ही अशुभ भावेश भी हों, या शुभ केन्द्रेश हों और त्रिकोणेश सिद्ध हों, परन्तु आपस में सम्बन्ध करते हों तो उनकी परस्पर दशान्तर्दशा भी अच्छा योग फल देगी, परन्तु पहली स्थिति की अपेक्षा मामूली कम शुभ फल होगा। बड़ा भाग शुभ फल का ही रहेगा।

(3) यदि त्रिकोणेश में पूर्वोक्त अशुभ भावेशत्वादि दोष हों और केवल केन्द्रेश (पापी) हो और सम्बन्ध बने तो भी दूसरी स्थिति के समान ही शुभ फल होगा।

अर्थात् दोषी होने पर सम्बन्ध मात्र से वे बली होते हैं। यहाँ दोषी से तात्पर्य नीचास्तंगतादि दोषों का ग्रहण नहीं है, ऐसी स्थिति में तो सम्बन्ध होने पर भी योगभंग हो जाता है। इस विषय में पीछे यथा प्रसंग सोदाहरण बताया जा चुका है। अतः त्रिकोणेश व केन्द्रेश की दुष्टता अशुभ भावेशत्व के कारण ही होती है।

(4) यदि केन्द्रेश व त्रिकोणेश दोनों ही दोषयुक्त हों और परस्पर सम्बन्ध रखते हों तो उनकी परस्पर दशान्तर्दशा में सामान्यतः शुभ फल होगा। अर्थात् बहुत श्रेष्ठ शुभ न होकर साधारण शुभ फल मिलेगा। अर्थात् कम से कम अशुभ फल तो नहीं मिलेगा।

(5) यदि केन्द्रेश त्रिकोणेश दोनों सर्वथा दोष रहित हों और सम्बन्ध न भी करें, तब भी उनकी परस्पर दशान्तर्दशा सामान्यतः शुभ होगी। अर्थात् अशुभ नहीं होगी। ऐसा हमारा विचार है। इसके विपरीत उद्योतकार और पंडित रामयत्न ओझा इस स्थिति में अशुभ फल मानते हैं। जबकि हम इसका समर्थन नहीं करते हैं। हम यहाँ सज्जनरंजनीकार के समर्थक हैं।

(6) यदि दोनों ही केन्द्रेश व त्रिकोणेशों में से कोई एक दोषयुक्त हो और सम्बन्ध भी न करे तो अशुभ फल होगा।

✪ पं. विनायक शास्त्री इस स्थिति में भी शुभ फल की सम्भावना मानते हैं, लेकिन यह बात हमें नहीं जंचती है।

(7) यदि दोनों ही दोषी हों और परस्पर सम्बन्ध भी न हो तो निश्चय से अशुभ फल होगा। यह निःसन्दिग्ध है। इसमें किसी की भी असहमति नहीं है। पं. विंनायक शास्त्री जी लिखते हैं–

'त्रिकोणेशोऽपि पापकृच्चेत् केन्द्रत्रिकोणेशयोरुभयोः पापत्वेन दशाद्वारकं-योगकारकत्वं न भवतीति तात्पर्यम्।

इन्हीं निष्कर्षों का समर्थन 'उत्तर कालामृत' में दशा संबंधी अध्याय में भी किया गया है–

केन्द्राधीश्वरकोणनायकदशाश्चान्तर्दशाः शोभनाः,
सामान्याश्च धनत्रिलाभभवनाधीशग्रहाणां दशाः।
षष्ठाष्टव्ययभावनायकदशाः कष्टा भवेयुः सदा,
नेतुर्लग्नमपीक्ष्य तत्र च वदेत्तत्तद्दशाभुक्तिषु॥

केन्द्रेश व त्रिकोणेश की दशान्तर्दशा शुभ होती है। 2, 3, 11 भावेशों की दशान्तर्दशा सामान्य व 6, 8, 12 भावेशों की दशा कष्ट देने वाली होती है।

महादशेश के अधिष्ठित भाव की शुभाशुभता व अन्तर्दशेश के भावेशत्व के तारतम्य से दशा का फल होता है।

अतः **'असम्बन्धेन पापकृत्'** का अर्थ यही है कि दोनों पापी हों और सम्बन्ध भी न करते हों तो अशुभ फल होगा। अन्यथा असम्बन्धित व निर्दोष केन्द्रत्रिकोणेशों की परस्पर दशान्तर्दशा शुभ फल ही करेगी।

योगाकारक व मारक दशान्तर्दशाओं का समन्वय :

आरम्भो राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिषु।
प्रथयन्ति तमारभ्य क्रमशः पापभुक्तयः॥ 33॥
तत्सम्बन्धिशुभानां च तथा पुनरसंयुजाम्।
शुभानां तु समत्वेन संयोगो योगकारिणाम्॥ 34॥

योगकारक ग्रह की महादशा में यदि किसी मारक ग्रह की अन्तर्दशा चल रही हो तो राजयोग की प्राप्ति हो सकती है। लेकिन इस योगारम्भ के लिए महादशेश व मारक अन्तर्दशेश में परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए।

इसी प्रकार योगकारक ग्रह की महादशा में सम्बन्धी पाप ग्रह की अन्तर्दशा चल रही हो तो राजयोग का लाभ पूर्वापेक्षा अधिक होगा।

योगकारक ग्रह की महादशा में सम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा हो तो और अच्छा राजयोग मिलेगा।

योगकारक ग्रह की महादशा में असम्बन्धी शुभ की अन्तर्दशा में सामान्य फल ही होता है, विशेष राजयोग नहीं बनता। यही पद्धति परस्पर विपरीत स्थिति में भी समझनी चाहिए।

ग्रहों का विभाजन तीन प्रकार से किया जाता है–शुभ, अशुभ, सम अथवा योगकारक, मारक और सम।

किसी एक ही ग्रह को कारकत्व व मारकत्व साथ ही प्राप्त हो सकता है। ऐसी स्थिति में माना जाता है कि उस कारक ग्रह की महादशा में प्रारम्भ में शुभान्तर्दशाओं में योगफल प्राप्त होता है और बाद में आने वाली किसी मारक अन्तर्दशा में वह अपना अनष्टि फल देता है।

किसी भी महादशा में सारे 9 ग्रहों की अन्तर्दशा आएगी। यदि महादशेश कारक हो तो उसमें भी सारी अन्तर्दशाएं आएंगी। उन अन्तर्दशेशों में से कुछ ग्रह शुभ होंगे और कुछ पापी। इनमें से भी कुछ ग्रह मारक होंगे और कुछ ग्रह सम। तब कारक की महादशा में उक्त प्रकार से आने वाली अन्तर्दशाओं में फल का समन्वय कैसे होगा उस विषय की व्यवस्था यहाँ की जा रही है।

(1) योगकारक की महादशा में ही योगफल मिलेगा। कब मिलेगा? इसका निर्भ्रान्त उत्तर पीछे दिया जा चुका है कि अपने समान योगकारक या स्वसम्बन्धी की अन्तर्दशा में उक्त योगफल मिलेगा। यह एक सामान्य नियम है तथा यह नियम सर्वत्र साधिकार है, अर्थात् सब जगह लागू होता है। अतः हम कह सकते हैं कि योगकारक की महादशा में अन्य योगकारक की अन्तर्दशा योगफल देने वाली होगी। यदि इन दोनों में योगकारकत्व के साथ-साथ सम्बन्ध भी हो तो योग फल श्रेष्ठ और उत्कृष्ट मिलेगा।

(2) लेकिन अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा में फल प्राप्ति का क्या क्रम रहेगा, इस विषय में बताया गया है कि सम्बन्ध रखने वाले मारक ग्रह, सम्बन्ध रखने वाले पाप ग्रह (शुभ केन्द्रेश, त्रिषडायेश आदि) और सम्बन्ध रखने वाले शुभ ग्रह की अन्तर्दशाओं में कभी भी राजयोग का प्रारम्भ हो सकता है। लेकिन राजयोग की तीव्रता व उत्कृष्टता में तारतम्य रहेगा।

(3) सम्बन्धी मारक ग्रह की अन्तर्दशा में यदि राजयोग फलित होता है तो वह विशेष प्रभावी और वास्तविक नहीं होता। केवल नाम का राजा वह होता है। आजकल जब राजा नहीं होते तो बड़े अधिकारी, मण्डलेश प्रभृति को इस श्रेणी में रखकर विचार किया जाएगा। ऐसी स्थिति में जब योगकारक ग्रह की महादशा चली और उसमें मारक अर्थात् द्वितीयेश व सप्तमेश की अन्तर्दशा चलेगी तो उन्नति, यश, पदवी आदि को प्राप्त करने की बात चलनी शुरू हो जाएगी। लोग कहने और समझने लगेंगे कि अब तो वही व्यक्ति पद पर आसीन हो जाएगा, लेकिन वास्तव में पद प्राप्ति नहीं होगी। अथवा ऐसी स्थिति में अस्थायी कार्यवाहक रूप में पद की प्राप्ति होगी। इस बात को बिल्कुल साफ शब्दों में **सुश्लोक शतक** में कहा है–

आरम्भो राजयोगस्य पापमारकभुक्तिषु।
नाम्नैव स भवेद्राजा तेजोहीनोऽल्पसौख्यभाक्॥

(4) यदि कारक की महादशा में सम्बन्धी पाप ग्रह की अन्तर्दशा आएगी तो उस अवधि में पूर्वोक्त की अपेक्षा कुछ अधिक फल मिलेगा, ऐसा पाराशरीकार का मन्तव्य है। लेकिन सुश्लोक शतक में पाप व मारक दोनों ही अन्तर्दशाओं को तुल्य फल वाली माना गया है। जैसा पूर्वोद्धृत श्लोक में स्पष्ट कहा है—पापमारकभुक्तिषु।

पाप ग्रह से तात्पर्य है—सर्वाधिक पापी अष्टमेश, फिर त्रिषडायेश व फिर केन्द्रेश शुभ ग्रह इत्यादि।

हमारे विचार से मारक व पाप ग्रहों की अन्तर्दशा में फलयोग में अवश्य अन्तर रहेगा। कारण मूल पाराशरी में ही छिपा है। कहा गया है कि सम्बन्धी होने पर पाप ग्रह भी योगफल देते हैं। देखिए पीछे उन्नीसवीं कारिका।

अतः निश्चय से सम्बन्धी मारक की अन्तर्दशा में यदि शुभ फल अर्थात् राजयोग का फल 20% मिलता होगा तो सम्बन्धी पाप की अन्तर्दशा में निश्चय से 40% मिलेगा। इसी प्रकार सम्बन्धी शुभ की अन्तर्दशा में 80% और कारक की महादशा में दूसरे योगकारक की अन्तर्दशा होने पर शत-प्रतिशत फल मिलेगा।

(5) इसीलिए नियम बनाया जा सकता है कि योगकारक ग्रह की महादशा में जब सम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा अर्थात् त्रिकोणेश और पापी केन्द्रेश की अन्तर्दशाएं आएंगी तो अवश्य ही अच्छा योगफल मिलेगा तथा इस फल की मात्रा पूर्वोक्त दोनों प्रकार की अन्तर्दशाओं से 2-3 गुनी अवश्य रहेगी।

(6) यहाँ तक तो सम्बन्धी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल विवेक बताया गया है। अब ऐसे ग्रहों की अन्तर्दशाओं का फल जानना भी आवश्यक होगा जो महादशेश से सम्बन्ध नहीं रखते हों। इस विषय में वक्तव्य है कि असम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा सम से थोड़ा अधिक अर्थात् मामूली योगफल देगी। यदि यह सम दशा दो फल देने वाली अन्तर्दशाओं के बीच में पड़ेगी तो पूर्व

प्राप्त फल का नाश नहीं कर सकेगी। उस योग की निरन्तरता बनी रहेगी। यदि अशुभ अन्तर्दशाओं के बीच में पड़ेगी तो सामान्य ही होगी।

(7) इसी प्रकार संबंध न रखने वाले ग्रहों की अन्तर्दशाओं के विषय में कहना है कि योगकारक ग्रह की महादशा में असंबंधी पाप की अन्तर्दशा कभी-कभी सम फल देने वाली होगी। कभी-कभी से तात्पर्य है कि उक्त पापग्रह चाहे संबंध न भी रखता हो तब भी वह फलानुगुण्य के सिद्धान्त से मिश्रित फल देगी। यह बात पीछे कारिका 31 में प्रतिपादित की जा चुकी है। अतः योगकारक अधिक बली हुआ तो कम अशुभ फल होगा और योगकारक की अपेक्षा पापी अन्तर्दशेश अधिक शक्तिशाली हो तो दोनों ही फल नष्टप्राय होकर सामान्य फल मिलेगा। इस विषय को 'सुश्लोक शतक में' स्पष्ट किया है–

असम्बन्धी शुभस्येह समा चान्तर्दशा भवेत्।
असम्बन्धी खलस्येह समा चान्तर्दशा क्वचित्॥

(8) इसी प्रकार असम्बन्धी कारक ग्रह की अन्तर्दशा भी स्थान, राशि आदि के फलानुगुण्य से और महादशेश से अन्तर्दशेश किस स्थान में है इस आधार पर मिश्रित फल ही देगी।

(9) इसी प्रकार मारक या पाप या शुभ आदि ग्रहों की महादशा में योगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा का फल जानना चाहिए। फल समन्वय का प्रकार यही रहेगा।

(10) मारक की महादशा में संबंधी मारक की दशा अत्यन्त कष्टप्रद, संबंधी पाप की अन्तर्दशा कुछ कम कष्टप्रद और संबंधी शुभ की अन्तर्दशा सम रहेगी।

(11) इसी प्रकार पापग्रह की महादशा में संबंधी मारक की कष्टप्रद, संबंधी कारक की उत्तम व संबंधी शुभ की शुभ होगी।

(12) शुभ ग्रह की महादशा में संबंधी कारक की परम शुभ, संबंधी शुभ की शुभ व संबंधी पाप की शुभ एवं संबंधी मारक की सम रहेगी, इत्यादि।

अब इस विषय को हम वास्तविक उदाहरण से स्पष्ट करना चाहते है। यह कुण्डली हमारे आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य पृष्ठ 462 पर भी उद्धृत की जा चुकी है।

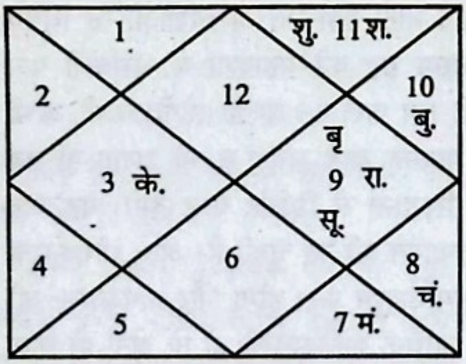

मई 1967 से मई 1987 तक इन्हें शुक्र की महादशा चली थी। शुक्र तृतीयेश होने के कारण शुभ है और अष्टमेश होने के कारण पापी है। लेकिन इसी सम्पूर्ण महादशा में इन्हें बहुत कुछ प्राप्त हुआ है।

शुक्र की महादशा में अधिक उपलब्धियों का कारण यह है कि लग्न में शुक्र की उच्च राशि है। अष्टमेश होकर द्वादश में बली होना राजयोग बनाता है। सम द्वादशेश के साथ अपना अशुभ फल सम कर देता है। आयु खण्डानुसार शुक्र की दशा मृत्युप्रद नहीं है, अस्तु।

पाराशर नियमों के अनुसार शुक्र में शुक्रान्तर (मई 67 से सितम्बर, 70) सामान्य रहा है। ये किसी हड़ताल के सिलसिले में घर से दूर विपन्नावस्था में रहे तथा जेल यात्रा भी करनी पड़ी।

सूर्यान्तर (सितम्बर 70 से सितम्बर 71) में इन्हें राजयोग की सम्भावनाएं दिखीं। बातचीत चली, लेकिन अन्तिम निर्णय नहीं हुआ। यह सिलसिला एक अच्छे प्रशासनिक पद का था। कारण, सूर्य षष्ठेश होकर लग्नेश त्रिकोणेश व दशमेश गुरु के साथ स्थित है, लेकिन स्वयं षष्ठेश होने के कारण पापी है और महादशेश का संबंधी नहीं है। अतः केवल बातें ही बातें रहीं।

मई 1973 तक चन्द्रमा की अन्तर्दशा थी। चन्द्रमा नीचगत होने पर भी त्रिकोणेश होकर द्वितीय त्रिकोण में है, अतः कारक है और महादशेश से केन्द्रगत है, अतः इस अवधि में विशेष उपलब्धि न हुई। अच्छे पूर्वोक्त पद की प्राप्ति की सम्भावना पुनः हुई। अगली अन्तर्दशा शुभ त्रिकोणेश

मंगल की थी जो महादशेश से त्रिकोण संबंध बना रहा है। अतः ये उक्त पद पर पहुँचकर अच्छी तरह जम गए।

राहु की अन्तर्दशा में इनके विपक्षी जाग गए। पद बना रहा, लेकिन अन्य प्रकार से आर्थिक हानि वा मानसिक क्षोभ उठाना पड़ा। कारण राहु केन्द्र में बैठकर भावेश युक्त होने से कारक है, लेकिन षष्ठेश का पाप प्रभाव भी लिए है। अतः मूल पद पर बने रहने पर भी शरीरिक, आर्थिक व मानसिक कष्ट का सामना करना पड़ा।

गुरु की अन्तर्दशा में (असंबंधी शुभ) धन सम्पत्ति का लाभ हुआ। घर में समृद्धि बढ़ी।

अब शनि की अन्तर्दशा शुरू हुई। इस अवधि में शुक्र व शनि परस्पर संबंधी हैं। शनि त्रिषडायेश होकर पापी है तथा शुक्र अष्टमेश होकर पापी है। शुक्र साथ ही त्रिषडायेश भी है। अतः संबंधी व पापी शनि की अन्तर्दशा होने के कारण अशुभ फल मिलना चाहिए। ऐसा ही हुआ, दुर्घटना में भयंकर चोट लगी। लेकिन एक आश्चर्यजनक बात हुई कि इनकी अच्छी पदोन्नति भी हुई। हमारा मत है कि शुक्र व शनि को ध्यान से देखें तो वे दोनों ही योगकारकत्व व कष्टकारकत्व दोनों ही प्रकार के धर्मों से युक्त हैं, अतः दोनों ही प्रकार के फल मिले। फिर पाराशरी मत का वक्ष्यमाण नियम है कि शनि की महादशा में शुक्रान्तर्दशा में शनि का फल व शुक्रदशा के शन्यन्तर में शुक्र का फल मिलता है। अतः शन्यन्तर में शुक्र का पाप फल मिला और शुक्र वहाँ योगकारक भी है। अतः योग भी मिला। शुक्र व शनि की दशा का विशेष विवेचन हम आगे प्रसंग आने पर करेंगे।

इसके बाद बुध की अन्तर्दशा शुरू हुई। बुध केन्द्रेश होने के कारण बहुत कम पापी है और एकादश में बैठकर अकेला है और कारक मध्य में है, अतः शुभ ही फल देगा। अतः इस अवधि में इनका श्रेष्ठ मकान बना तथा अन्य प्रकार से परिवार में वृद्धि हुई। पुत्र का अच्छा रोजगार शुरू हुआ।

अब केतु की अन्तर्दशा को लें। केतु भी राहु की तरह मिश्रित स्वभाव वाला है व महादशेश से त्रिकोण संबंध बनाए है। अतः इस अवधि में

मिश्रित फल मिला। मामूली स्वास्थ्य खराब होकर अवस्थाजन्य रोगोत्पत्ति का भय उत्पन्न हो गया, लेकिन पद, मान, प्रतिष्ठा बढ़ी।

अब सूर्य में सूर्य की अन्तर्दशा सामान्य है, कोई उल्लेखनीय व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं हुई है, केवल इनके पुत्र का विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ है। लेकिन उस समय शुभ चन्द्रमा की अन्तर्दशा चल चुकी थी।

हम समझते हैं कि पराशरोक्त चतुर्विध संबंधों का घटित होना यहाँ पर कठिन है। अतः ऐसे स्थलों में केन्द्र व त्रिकोण संबंध भी फल देने वाला होता है। ऐसा मानना न्यायसंगत है। फलदीपिका में इससे भी अच्छा संबंध माना गया है–

राशौ स्थितिर्मिथो योगो दृष्टिः केन्द्रेषु संस्थितिः।
त्रिकोणे वा स्थितिः पञ्चप्रकारो बन्ध ईरितः॥

(भावचिन्ता, श्लोक 30)

'परस्पर एक-दूसरे की राशि में होना, एकत्र स्थित होना, परस्पर पूर्ण दृष्टि होना, परस्पर केन्द्र में होना, परस्पर त्रिकोण में होना यह पाँच प्रकार का संबंध होता है।

शुभदशा में योगकारक की अन्तर्दशा :

शुभस्यास्य प्रसक्तस्य दशायां योगकारकाः।
स्वभुक्तिषु प्रयच्छन्ति कुत्रचिद्योगजं फलम्॥ 35॥

शुभ ग्रह की महादशा में संबंधी योगकारक की अन्तर्दशा होने पर सर्वत्र योगफल नहीं मिलता, शुभ फल ही मिलेगा।

यदि दोनों में संबंध न हो तब भी कुछ कम शुभ फल मिलेगा।

यदि शुभग्रह की महादशा में शुभग्रह की ही अन्तर्दशा हो तो सधर्मी होने के कारण शुभ फल होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आत्मसंबंधी होने पर पाप ग्रह भी योगज फल को देते हैं, यह बात पीछे बता चुके हैं। तब शुभग्रह का संबंधी योगकारक ग्रह सर्वत्र अपना योगफल क्यों नहीं देगा, यह बात शंका उत्पन्न करती है। इस विषय में कहा गया है कि महादशा का स्वामी तो शुभग्रह है। अतः वह अपने

संबंधी की अन्तर्दशा में अपना फल अंर्थात् शुभ फल ही देगा। कहीं-कहीं पर योगफल भी हो सकता है, इससे तात्पर्य है कि शुभ व योगकारक में परस्पर विरुद्धधर्मिता नहीं है। अत: योगफल घटित होने की संभावनाएं तो बनी ही रहतीं हैं, और शुभ फल में कोई संदेह नहीं होता है।

इसी प्रकार शुभ महादशा में सम ग्रह की अन्तर्दशा सम व पापमारक भुक्तियां मिश्रित फल देंगी। कारण यह है कि यहाँ फलानुगुण्य का सिद्धान्त लागू होगा।

लेकिन यहाँ हम बताना चाहते हैं कि शुभग्रह की महादशा में योगकारक की अन्तर्दशा को पाराशरी में कहीं-कहीं पर योगफल देने वाली बताया है, वहीं पर 'सुश्लोकशतककार' ने इसे निश्चय ही राज्यप्रद माना है।

शुभग्रहस्य सम्बन्धी योगकर्ता हि यो ग्रहः।
अस्याप्यन्तर्दशामध्ये राज्यसौख्यं भवेद् ध्रुवम्॥

'शुभग्रह की महादशा में संबंधित योगकारक की अन्तर्दशा होने पर निश्चय से राजसुख होता है।

हमें भी सुश्लोककार का मत बिल्कुल निराधार नहीं दिखता। शुभदशा में योगकारक की अन्तर्दशा में शुभफल तो निश्चय से होता ही है। यदि वे परस्पर संबंधी हों तो योगफल, और संबंधी न हों तो शुभफल होता है, ऐसा हमारा अनुभव है।

इस संदर्भ में पीछे कारिका 21 की व्याख्या में उद्धृत कर्क लग्न वाली कुण्डली कृपया सामने रख लें।

वहाँ पर बृहस्पति नवमेश होने के कारण परम शुभ और षष्ठेश होने के कारण विशेष हानिप्रद नहीं है। एक मत से तो शुभ त्रिषडायेश शुभ होते हैं। हमारा मन्तव्य है कि वे पाप तो कम से कम नहीं होते। अत: बृहस्पति महादशा इन्हें सामान्यत: शुभ ही मानी जाएगी। यह समय जुलाई 67 से जुलाई 83 तक रहा था। बृहस्पति में बृहस्पति का अन्तर सामान्य ही रहा था। गुरु में शनि की अन्तर्दशा मिश्रित फल वाली थी। गुरु शनि में केन्द्र संबंध भी है और शनि पापी होता हुआ भी कारक है। गुरु में शुक्र की अन्तर्दशा में संबंध होने पर भी इन्हें अत्यन्त आर्थिक कष्ट हुआ

तथा रोजगार में प्रबल रूप से पिछड़ गए। कारण शुक्र पापी है और गुरु योगकारक नहीं है।

लेकिन उच्च नवांशस्थ द्वितीयेश सूर्य की अन्तर्दशा में निश्चय से दो बार अलग-अलग स्थानों पर राजकीय सेवा में जाने का अवसर मिला। अतः शुभग्रह की महादशा में योगकारक की अन्तर्दशा संबंध होने पर अवश्य ही योगफल तो घटित करती है, चाहे वह अंशतः ही क्यों न घटित होता हो। पूर्ण योगफल तो निर्दोष योगकारक की दशान्तर्दशा में ही घटित होगा।

सम ग्रह की अन्तर्दशा भी शुभग्रह की महादशा में जब आती है, तब कभी-कभी योगफल दे जाती है, यह बात सम्भव है। उक्त उदाहरण में सम सूर्य की अन्तर्दशा में इस जातक को पक्की नौकरी मिली थी। जबकि सूर्य व गुरु का संबंध नहीं बनता है। गुरु सूर्य की राशि में है और सूर्य उच्च नवांश में है, यह सूक्ष्म बात है। अतः फल मिला।

राहु-केतु की दशान्तर्दशा का फल :

तमोग्रहौ शुभारूढावसम्बन्धेन केनचित्।
अन्तर्दशानुसारेण भवेतां योगकारकौ।। 36।।

राहु व केतु यदि शुभ स्थानों में पड़े हों और किसी शुभ स्थानेश से संबंध करें या न करें, तब भी अपनी अन्तर्दशा में अथवा अपनी महादशा में योगकारक होते हैं।

राहु व केतु शुभ स्थानों में पड़े हों और किसी शुभ स्थानेश से संबंध करें या न करें, तब भी अपनी अन्तर्दशा में अथवा अपनी महादशा में योगकारक होते हैं।

राहु व केतु के विषय में पीछे बताया गया है कि जिस भाव में बैठते हैं उसका और जिस भावेश के साथ बैठते हैं, उसका भी प्रभाव अपने में समेट लेते हैं।

अतः राहु-केतु केन्द्र या त्रिकोण में बैठकर केन्द्रेश या त्रिकोणेश से संबंध करते हों तो अवश्य ही योगकारक होते हैं।

फिर केन्द्रेश या त्रिकोणेश स्वयं ही संबंधमात्र से बलवान् होकर योगकारक होते हैं।

ऐसी स्थिति में जब राहु-केतु स्वयं केन्द्र या त्रिकोण में बैठे हों और इनमें से किसी एक भावेश के साथ संबंध भी न करें तो वे स्वयं योगकारक होकर केन्द्रेश या त्रिकोणेश की महादशा में अपनी अन्तर्दशा आने पर अवश्य ही फलदायक होंगे। यह बात पूर्वोक्त नियमों से ही स्वतः सिद्ध है। तब इस कारिका की अवतारणा का क्या प्रयोजन शेष रह जाता है, इस जिज्ञासा में वक्तव्य है कि राहु-केतु उक्त परिस्थिति में तो निःसन्देह योगकारक होकर स्वदशान्तर्दशा में योगफल प्रदान करेंगे ही, लेकिन इनका संबंध न हो तब भी ये शुभ स्थान अर्थात् केन्द्र व त्रिकोणों में बैठने मात्र से ही स्वदशान्तर्दशा में योगफल करेंगे। इसी बात को प्रकट करने के लिए कारिका में 'असंबंधेन केनचित्' कहा गया है। अर्थात् किसी से संबंध न भी करें तब भी योगकारक होंगे।

'शुभारूढौ' शब्द का तात्पर्य है—शुभ स्थानों में आरूढ़ होना, अर्थात् बैठना। शुभ स्थानों से क्या तात्पर्य है, इस विषय में त्रिकोण अर्थात् 1, 5, 9 भावों की शुभता में तो किसी की भी असहमति नहीं है। अतः त्रिकोण निर्विवाद रूप से शुभ हैं। पं. विनायक शास्त्री 'वेताल' इसी मत को मानने वाले हैं। वे कहते हैं कि यहाँ शुभ स्थानों से संलग्न त्रिकोण का ही ग्रहण अभीष्ट है—

शुभारूढौ शुभस्थानमारूढौ लग्नत्रिकोणगौ।

लेकिन शुभ स्थानों में केन्द्र भावों 4, 7, 10 की भी गणना की जा सकती है। उद्योतकार का मत यही है कि ये दोनों केन्द्र या त्रिकोण में बैठकर उक्त फल करते हैं। सज्जनरंजनीकार भी केन्द्र व त्रिकोण दोनों का ही ग्रहण करते हैं।

हमारे विचार से इसका स्वारस्य यही है कि राहु-केतु जिस भाव में बैठते हैं तद्वत् ही फलदायक होते हैं। जैसे राहु-केतु त्रिकोण में बैठें तो इनका फल वही होगा जो वहाँ स्वयं त्रिकोणेश के बैठने से होता।

यदि ये किसी अन्य भावेश के साथ बैठे हों तो उसका प्रभाव भी ग्रहण कर लेंगे। उदाहरणर्थ—ये अष्टमेश के साथ बैठे हों तो अष्टमेश का फल देंगे। इस विषय में पीछे कारिका 13 की
अवलोकन करें।

इतने मात्र से ही हम सरलतापूर्वक यह समझ सकते हैं कि शुभ केन्द्रेश के साथ बैठेंगे तो इन्हें भी केन्द्राधिपत्य दोष लगेगा और यदि पाप केन्द्रेश के साथ बैठेंगे तो शुभ फल देंगे। अतः पापी सप्तमेश के साथ बैठकर उन्हें केन्द्रेशत्व व मारकत्व दोनों ही प्राप्त होंगे। अतः चतुर्थ, सप्तम व दशम में व त्रिकाणों में बैठकर भी राहु-केतु पूर्वोक्त नियमों के प्ररिप्रेक्ष्य में असंबंधी होकर भी शुभ फल देंगे। त्रिकोणगत होकर निःसंदिग्ध रूप से और केन्द्रगत होकर शुभ या पाप राशि के आधार पर यथावसर फल देंगे।

अब असंबंध शब्द की भी परीक्षा करें। असंबंध का अर्थ है कि संबंध न होना। यदि केन्द्र में बैठे और त्रिकोणेश से संबंध न करे अथवा त्रिकोण में बैठकर केन्द्रेश से संबंध न करें तो इन्हें असंबंधी मानना युक्तियुक्त है। लेकिन केन्द्र में बैठकर केन्द्रेश के साथ व त्रिकोण में बैठकर त्रिकोणेश के साथ संबंध करें तो क्या इन्हें संबंधी माना जाएगा? इस विषय में पूर्वोक्त नियम का पालन करना पड़ेगा। कहा गया है कि '**यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेशसंयुतौ**' अर्थात् जिसके साथ बैठें, उसी का फल देंगे। अतः केन्द्रेश के साथ केन्द्र में व त्रिकोणेश के साथ त्रिकोण में बैठकर भी वे केन्द्रेश व त्रिकोणेशवत् ही माने जाएंगे तथा केन्द्रेश व त्रिकोणेश का परस्पर संबंध ही संबंध है। अर्थात् योगकारक संबंध है। अतः उक्त स्थिति में उनकी सहस्थिति भी असंबंध की तरह ही रहेगी–

केवल लग्नेशत्रिकोणेशसम्बन्धोऽप्यत्रासम्बन्ध इव।
यद्यद् भावेशसंयुताविति अनेन शुभारूढफलस्यैव दार्ढ्यात्।

(संस्कृत टीका, वेताल शास्त्री)

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि त्रिकोणों में बैठकर या पापराशि में केन्द्र में बैठकर केन्द्र त्रिकोण संबंध न करने पर भी शुभ फल देंगे। संबंध होने पर फलदायक होंगे, यह तो सामान्य नियम है ही, असंबंधी होने पर भी फल देंगे, यह विशेष नियम है।

अतः केन्द्रेश या त्रिकोणेश की महादशा में इनकी अन्तर्दशा पूर्वोक्त परिस्थिति में योगफल देगी और इनकी अपनी महादशा में केन्द्रेश व त्रिकोणेश की अन्तर्दशा भी पूर्ववत् योगकारक होगी।

अब इस विषय को उदाहरण से समझिए। पीछे कारिका 13 की व्याख्या में तुला लग्नोत्पन्न एक धनी मानी सज्जन की कुण्डली दी गई है। इन्हें इस समय शुक्र की महादशा में राहु की अन्तर्दशा चल रही है। इस दशा में इनको अच्छी पदोन्नति, धन का लाभ, विलासितापूर्ण जीवन की वृद्धि, शरीर सुख, लम्बे समय से चले आ रहे विरोधियों का शमन व स्वयं का मान-सम्मान बढ़ने जैसा फल मिल रहा है। यहाँ त्रिकोण में बैठकर अकेला राहु कारक है। उसका संबंध किसी त्रिकोणेश या केन्द्रेश से नहीं है। शुक्र केन्द्रेश व त्रिकोणेश है और अष्टमेशत्व का दोष लग्नेश होने के कारण बिल्कुल कम हो गया। अतः केन्द्र-त्रिकोणेश की महादशा में राहु (त्रिकोणगत व असम्बन्धी) की अन्तर्दशा उत्तम योगफल दे रही है।

अतः इस कारिका से यह बात भी ध्वनित हो जाती है कि राहु-केतु अशुभ भावों में बैठकर असंबंधी होने पर अशुभ फल देंगे तथा संबंधी होने पर तो अवश्य ही अनिष्ट करेंगे। इस बात को समझने के लिए पीछे कारिका 14 में उदाहृत भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी की कुण्डली को अपने सामने रखिए।

शनि में राहु की अन्तर्दशा आने पर इनकी मृत्यु हो गई थी। शनि मारकेश है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

राहु षष्ठ स्थान में स्थित है। अतः भाव साहचर्य से अनिष्ट स्थान में है। शुक्र के साथ है और शुक्र पापी लाभेश व शुभता रहित केन्द्रेश होने के कारण पापी है। अतः राहु में भावेश साहचर्य से भी पापत्व आ जाता है। अतः उसने पापतम फल दिया था। योगकारी → Δ + K

पापग्रह की दशाओं का फल निर्णय :

पापा यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम्।
भुक्तयः पापफलदास्तत्संयुक्शुभभुक्तयः॥ 37॥
भवन्ति मिश्रफलदा भुक्तयो योगकारिणाम्।
अत्यन्तपापफलदा भवन्ति तदसंयुजाम्॥ 38॥

पाप ग्रह की महादशा में यदि संबंध न रखने वाले शुभग्रह की अन्तर्दशा हो तो पाप फल होता है।

यदि शुभ ग्रह संबंध रखता हो तो उसकी अन्तर्दशा में मिश्रित फल होता है।

यदि पाप ग्रह की महादशा में संबंध रखने वाले योगकारक की अन्तर्दशा हो तो मिश्रित फल होता है।

इसी प्रकार असंबंधित योगकारक की अन्तर्दशा यदि पाप ग्रह की महादशा में आए तो अत्यन्त पाप फल देने वाली होती है।

पापग्रह की महादशा में यदि पापग्रह की ही अन्तर्दशा चले तो अशुभ फल मिलेगा, यह बात स्वतः सिद्ध है। पापग्रह यदि महादशेश से भी 6, 8, 12 स्थानों में स्थित हो तथा दोनों पापी हों और संबंध रखते हों तो परम अशुभ फल मिलेगा, इसमें संशय नहीं है।

अब इन कारिकाओं में पाप ग्रहों की महादशा में अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा का फल विवेक बताया जा रहा है। इस संदर्भ में एक सामान्य नियम कथमपि नहीं भूलना चाहिए कि महादशेश व अन्तर्दशेश का संबंध होने पर महादशेश का शुभ फल उसमें बढ़ेगा। यदि महादशेश पापी है तो संबंध होने पर अशुभ फल घटेगा।

(1) महादशेश यदि पाप ग्रह हो अर्थात् 8, 11, 6, 3 स्थानों का स्वामी हो तो महादशेश क्रमशः कम अशुभ या पाप होता है। केन्द्रेश गुरु, शुक्र, बुध व चन्द्र भी क्रमशः कम अशुभ होते हैं।

अतः पापी ग्रह की महादशा चल रही हो और उसमें ऐसे शुभ ग्रह की अन्तर्दशा आए जो महादशेश से संबंध न करता हो तो उस अन्तर्दशा में पाप फल मिलेगा।

(2) पापी महादशेश से संबंध रखने वाले शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में शुभ व पाप दोनों ही प्रकार के मिले-जुले फल मिलेंगे। अर्थात् संबंध होने से अशुभ फल की मात्रा घटेगी और शुभ अन्तर्दशेश को अपना फल दिखाने का कुछ अवसर मिल जाएगा।

(3) पापी महादशेश से संबंध न करने वाला अन्तर्दशेश यदि कुण्डली में योगकारक भी है तो भी वह अत्यन्त अशुभ फल दिखाएगा।

अर्थात् महादशेश से संबंध न होने पर अन्तर्दशेश को अपना फल दिखाने का मौका ही नहीं मिलेगा और फ़लस्वरूप अशुभ फल की मात्रा बढ़ जाएगी।

(4) यदि महादशेंश पापी है और अन्तर्दशेश से संबंध है तो योगकारक अन्तर्दशेश भी मिश्र फल देगा। अर्थात् परस्पर संबंध होने के कारण योगकारक को भी अपना कुछ फल दिखाने का अवसर मिलेगा।

इसं विषय को स्पष्ट करने के लिए-वेताल शास्त्री जी की संस्कृत टीका में एक उदाहरण मिलता है। वे कहते हैं कि महादशेश तो सर्वप्रभुता सम्पन्न राजा की तरह होता है और अन्तर्दशेश उस राजा की आज्ञा मानने वाला अधिकारी।

अब राजा पापी है तो शुभग्रह अर्थात् सज्जन अधिकारी तो मन से न चाहते हुए भी राजा की इच्छानुसार अर्थात् पाप फल ही करेगा। कारण यह है कि सज्जन अपने अपमान व कर्त्तव्य भंग से डरेगा।

इसी तरह यदि अन्तर्दशेश योगकारक अर्थात् अत्यन्त सज्जन हो, वह तो बिल्कुल ही उस राजा के सामने भीगी बिल्ली बन जाएगा और अत्यन्त दब्बू कर्मचारी की तरह अपने मालिक की इच्छा का पालन करेगा। ऐसी स्थिति राजा व अधिकारी में संबंध (रिश्तेदारी) न होने पर ही होती है।

अब यदि राजा (महादशेश) से अधिकारी (अन्तर्दशेश) का संबंध (रिश्तेदारी) है तो अधिकारी थोड़ा निर्भय अवश्य हो जाएगा। अतः वह जब भी मौका मिलेगा तभी अपनी इच्छानुसार कार्य करेगा तथा मौका न मिलने पर राजा की आज्ञा ही मानेगा। अतः कहा गया है कि संबंधी होने पर योगकारक व शुभ अन्तर्दशेश शुभ फल भी देंगे और अशुभ फल भी।

अतः निष्कर्ष निकलता है कि पीछे जो तत्तद्फलानुणुणता का सिद्धान्त बताया था, अर्थात् दो विरोधी धर्म वाले ग्रहों की दशान्तर्दशा में दोनों ही मिलेंगे, यहाँ उसी सिद्धान्त का विस्तार बताया गया है।

(1) पाप महादशा में संबंधी पापान्तर्दशा = पाप फल

(2) पाप महादशा में संबंधी समान्तर्दशा = कम पाप फल

(3) पाप महादशा में संबंधी शुभान्तर्दशा = शुभाशुभ फल

(4) पाप महादशा में संबंधी योगकारकान्तर्दशा = पाप फल

(5) पाप महादशा में असंबंधी पापान्तर्दशा = पाप फल

(6) पाप महादशा में असंबंधी समान्तर्दशा = कुछ कम पाप फल

(7) पाप महादशा में असंबंधी शुभान्तर्दशा = पाप फल

(8) पाप महादशा में असंबंधी योगकारकान्तर्दशा = अत्यन्त पाप फल

यदि पाप महादशा में मारकेश की अन्तर्दशा हो तो तत्तत्फलानुगुण्य के आधार पर मिश्रित अर्थात् पहले शुभ/पाप व बाद में मारक फल मिलेगा।

इस प्रसंग को समझने के लिए पहले पूर्वोक्त कारिका 31 की व्याख्या को हृदयंगम कर लें तो सुविधा होगी।

मारक दशा का विशेष फल नियम :

सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु।
हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु॥ 39॥

मारक ग्रह की महादशा रहने पर संबंधी होते हुए भी शुभान्तर्दशा में मरण नहीं होता।

इसके विपरीत संबंध न होने पर पापान्तर्दशा में मृत्यु हो जाया करती है।

सभी ग्रह अपना फल अपनी महादशा में पड़ने वाली अपने सधर्मियों और अपने संबंधियों की अन्तर्दशाओं में देंगे, यह एक सामान्य नियम प्रतिपादित किया जा चुका है। अब इसी सामान्य नियम का अपवाद यहाँ बताया जा रहा है।

यदि मारक ग्रह की महादशा चल रही हो और उसमें शुभग्रह की अन्तर्दशा चले तो उस अन्तर्दशेश महादशेश का संबंध होने पर भी उस शुभ (त्रिकोणेशादि) की अन्तर्दशा में मरण नहीं होता है। यह स्वयमेव स्पष्ट है कि शुभ ग्रह से संबंध न हो तब तो मारक दशा में मरण होना नहीं देखा जाता है।

इसी प्रकार जब शुभ ग्रह मृत्युदायक नहीं होता तो योगकारक ग्रह तो शुभ से भी शुभतर होता है। अतः योगकारक की अन्तर्दशा में तो संबंध हो या न हो, मृत्यु जैसा भीषण फल नहीं होता है।

इसके विपरीत मारक की महादशा में यदि संबंधी पापी ग्रह की अन्तर्दशा हो तो मृत्यु होना सामान्य नियम से ही सिद्ध है, लेकिन संबंध न होने पर भी पापग्रह की अन्तर्दशा में मरण हो जाया करता है। यही अपवाद इस कारिका में बताया गया है। यहाँ एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि मारक दशा व अन्तर्दशाओं के पाप के समय आयु खण्ड समाप्त न होता हो तो प्रायः रोग, शोक, कष्ट आदि हुआ करते हैं।

यदि किसी व्यक्ति की दीर्घायु सिद्ध होती हो और मारक दशा 35 वर्ष की आयु में ही आ जाए तो मरण नहीं कहना चाहिए। तब ऐसे समय में कष्ट होता है।

आयु खण्ड समाप्त होता हुआ प्रतीत होने पर भी यदि मारक दशा में लगातार संबंधी या असंबंधी शुभ या योगकारक की अन्तर्दशाएं आती जायेंगी तो मृत्यु पीछे हटती जाती है। मारक दशा में पापान्तर्दशा आने पर ही मृत्यु होती है। इसी मन्तव्य की पुष्टि 'उत्तर कालामृत' दशाफल खण्ड के श्लोक 26 में की गई है–

योगं चैव मृतिर्यदा युगपदेवेकस्तु दातुं क्षमः।
तस्यादौ स्वविपाक एव सुमहद्योगं प्रकुर्यादसौ।
यादृक्खेटमहावशा सुफलदा कृत्स्ना खला भुक्तयः।
तद्वच्छोभनदास्तदीयमरणं दूरादपास्यत्यसौ।।

'एक ही ग्रह यदि कारक व मारक हो तो वह ग्रह अपनी दशा में अपनी अन्तर्दशा में शुभफल देता है। बाद की अन्तर्दशाएं यदि शुभ ग्रहों की आती जाएं और पाप ग्रहों की अन्तर्दशा न आए तो मृत्यु जैसे फल को दूर हटाता जाता है।'

ऐसे ग्रह के विषय में वहीं पर बताया गया है कि ऐसा ग्रह मिश्रित फल नहीं करता है। यदि उस महादशा में शुभान्तर्दशाएं न आती दिखें तो वह दशा सर्वदा निष्फल होती है। अर्थात् आयुखण्ड समाप्त होता हो तो मृत्यु होगी और आयु खण्ड समाप्त न हो रहा हो तो वह दशा कोई उपलब्धि न कराकर निष्फल होती है।

इस नियम का बिल्कुल स्पष्ट उदाहरण श्रीमती गांधी की कुण्डली में मिलता है। शनि को मारकत्व प्राप्त है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। बुध, केतु, शुक्र, सूर्य, चन्द्र, मंगल ये अन्तर्दशाएं शुभ या सम ग्रहों की थीं,

अतः मरण जैसा अनिष्ट फल घटित नहीं हुआ। लेकिन राहु स्वभावतः पापी ग्रह है। उसका पापत्व षष्ठगत होने से और बढ़ा। उस पर भी शुक्र का साथ उसके पापत्व को न घटा सका। अतः राहु की अन्तर्दशा में मृत्यु हो गई। यद्यपि राहु व शनि का परस्पर संबंध भी नहीं था। संयोगवशात् राहु यदि केन्द्र या त्रिकोण में होता तो ऐसा फल न मिलता और बृहस्पति नवमेश होने के कारण शुभ ही है। अतः वह अन्तर्दशा भी मरणप्रद न होती। पाराशर नियमों को आप सर्वत्र घटित होता हुआ देखेंगे। लेकिन इन नियमों का विस्तार जानने के लिए अन्य ग्रन्थ भी पढ़ने चाहिएं।

बुध तृतीयेश होने के कारण इस उदाहरण में अल्पतम पापी है। शनि से त्रिकोण संबंध रखता है तथा कारक ही है। केतु द्वादश में अकेला होने के कारण सम है। शुक्र केन्द्रेश होकर सम व एकादशेश होकर पापी है। अतः पापफल युक्त था। शनि में शुक्र की अन्तर्दशा का फल विशेष नियमों से नियन्त्रित होता है। इस विषय में पीछे यथावसर बता आए हैं और अगली कारिका की व्याख्या में विस्तार से समझाएंगे। सूर्य कारक है, चन्द्रमा लग्नेश होकर शुभ है। मंगल तो परम कारक है। अतः कष्ट तो हुआ, लेकिन मृत्यु जैसा भीषण फल घटित नहीं हुआ। यहाँ राहु ही क्यों विशेष मारक हुआ, इस विषय में उसका पापत्व तो कारण है ही। साथ ही उत्तर कालामृत के इस विशेष नियम को देखिए–

'....तौ द्वौ पागृहस्थितौ शुभयुतौ स्यातां महामारकौ।'

(दशाफल, श्लोक 18)

'राहु केतु यदि पाप स्थान में शुभग्रह (नैसर्गिक) से युक्त होकर बैठे हों तो अपनी दशान्तर्दशा में महामारक होते हैं।'

अब आपके मस्तिष्क में एक शंका उठ सकती है कि राहु के साथ शुक्र भी तो पापी है तथा शुक्र की अन्तर्दशा तो राहु से पहले ही आई थी। इस विषय में हम पहले ही कह चुके हैं कि पाराशरी के इन नियमों का गूढ मन्थन कर विद्वानों ने अनुसंधान किया है। मूल रूप से इन नियमों को आकट्य मानकर भी उन्होंने कुछेक ऐसी परिस्थितियों की खोज की, जिनमें उक्त नियम कम तीव्रता से लागू होते हैं। अथवा विशेष फलदायक होते हैं। **प्रश्न-मार्ग, उत्तर कालामृत, भावार्थरत्नाकर, जातकालंकार,**

सुश्लोकशतक, फलदीपिका आदि ग्रन्थों में आपको इन नियमों के प्ररिप्रेक्ष्य में एक विशेष गूढ अन्तर्दृष्टि प्राप्त होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। षष्ठस्थ शुक्र के विषय में देखिए–

षष्ठस्थः शुभकृत्कविः स्मरगृहज्ञानायमानस्थितो।
राहुयोगकरस्तृतीयनिलये केतुस्तु योगप्रदः।।

(उत्तरकाला., राज., श्लोक 9)

'षष्ठ स्थान में शुक्र शुभ होता है। सप्तम, चतुर्थ, नवम या पंचम, एकादश, दशम में राहु और तृतीयस्थ केतु योगप्रद है।'

यद्यपि कर्क लग्न में शुक्र पाराशरी नियमों से शुभ नहीं होता, परन्तु उत्तरकालामृतकार ने अनुभव के आधार पर यह स्थिति खोज ली कि शुक्र षष्ठस्थ होकर शुभ होता है। इसी प्रकार द्वादश शुक्र को भी योगप्रद माना गया है। इसी बात का समर्थन **भावार्थरत्नाकर** भी करता है–

शुक्रस्य षष्ठसंस्थानं योगदं भवति ध्रुवम्।
व्ययस्थितस्य शुक्रस्य यथायोगं वदन्ति हि।।

(अ. 13 श्लोक 4)

अब आपको यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि उक्त उदाहरण में षष्टस्थ शुक्र मारक क्यों न हुआ, अस्तु।

अतः मारक ग्रह की महादशा से अन्तर्दशाओं का फल नियम इस प्रकार होगा–

(1) मारक महादशा में संबंधी शुभान्तर्दशा = मरणप्रद नहीं।
(2) मारक महादशा में असंबंधी शुभान्तर्दशा = मरणप्रद नहीं।
(3) मारक महादशा में संबंधी समान्तर्दशा = कुछ अशुभ फल।
(4) मारक महादशा में असंबंधी समान्तर्दशा = कुछ अशुभ फल।
(5) मारक महादशा में संबंधी योगकारकान्तर्दशा = शुभ फल।
(6) मारक महादशा में असंबंधी योगकारकान्तर्दशा = शुभ फल।
(7) मारक महादशा में पापान्तर्दशा = अति पापफल।
(8) मारक महादशा में मारकान्तर्दशा = मरणप्रद।

पाप या मारकान्तर्दशा में संबंध होना आवश्यक नहीं है। वे तो सधर्मी होने के कारण ही महादशेश के स्वाभावानुकूल फल देते हैं।

शनि व शुक्र की दशा का विशेष नियम :

परस्परदशायां स्वभुक्तौ सूर्यजभार्गवौ।
व्यत्ययेन विशेषेण प्रदिशेतां शुभाशुभम्।। 40।।

शनि व शुक्र की महादशा या अन्तर्दशा में विशेषतया इनका शुभ या अशुभ जैसा भी फल हो, वह एक दूसरे की दशा में मिलता है। शनि का फल शुक्रान्तर में और शुक्र का फल शन्यन्तर में मिलता है, यह आशय है।

वास्तव में शुक्र व शनि परस्पर मित्र हैं। अतः शनि की महादशा में शुक्र का अन्तर आने पर शनि का विशेष फल और शुक्र में शन्यन्तर होने पर शुक्र का विशेष शुभाशुभ फल घटित होगा।

यहाँ शंका यह होगी कि अभी तक जितने भी पाराशरी सिद्धान्त बताए गए हैं, उनमें कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं आया है कि परस्पर निसर्ग मैत्री होने पर दशान्तर्दशा का फल मित्र की अन्तर्दशा में घटित होगा। वहाँ तो केवल सधर्मिता, संबंध और तत्तत् फलानुगुण्य के आधार पर दशान्तर्दशा का फल निर्णय बताया गया है। इस विषय में वक्तव्य है कि अभी तक जो सामान्य नियम बताए गए थे, उन्हीं के अपवाद स्वरूप यह कारिका लिखी गई है। इसमें बताया गया है कि केवल शनि और शुक्र के विषय में यह नियम है कि यहाँ पर सधर्मिता, संबंध अथवा तत्तत्फलानुगुणता न होने पर संबंधी की तरह ही फल (शुभ/अशुभ/योग) तीव्रता के साथ घटित होता है। यह संबंध न होने पर भी संबंध की तरह है।

इस विषय में सभी सहमत हैं कि पाराशरी की यह कारिका विशेष अर्थ रखती है। पं. वेताल शास्त्री जी ने इसके पीछे हेतु ढूंढने का प्रयत्न करते हुए कहा है कि शनि व शुक्र दोनों में परम मैत्री है। अतः दोनों एक-दूसरे का फल देते हैं।

साथ ही शुक्र यदि लग्नेश हो अर्थात् वृष या तुला लग्न हो तो शनि क्रमशः नवमेश-दशमेश और चतुर्थेश-पंचमेश होकर परम योगकारक होता है।

इसी प्रकार मकर या कुम्भ लग्न में शनि लग्नेश होता है और शुक्र क्रमशः पंचमेश व दशमेश और चतुर्थेश-नवमेश होकर योगकारक हो जाता है।

इसी कारण लग्नेश होने के कारण शनि या शुक्र तो स्वयं योगकारक होकर इन लग्नों में उत्पन्न होने वाले जातकों को एक-दूसरे की अन्तर्दशा में सधर्मी होने के कारण शुभ फल देंगे।

शेष लग्नों में इनकी दशान्तर्दशा पूर्वोक्त भावेशत्वादि के निर्णयानुसार शुभाशुभ फल देगी। ऐसा समझना चाहिए। इस विषय में अनुभव भी यही कहता है कि दोनों परस्पर दशान्तर्दशा विशेष शुभ या विशेष अशुभ फल दिखाती हैं। उत्तरकालामृत में वे परिस्थितियाँ स्पष्ट कही गई हैं-

भृग्वार्की यदि तुंगभे स्वभवने वर्गोत्तमादौ स्थितौ,
तुल्यौ योगकरौ तथैव बलिनौ तौ चेन्मिथौ पाकगौ।
भूपालो धनदोपमोऽपि सततं भिक्षाशनो निष्फलः,
तत्रैकस्तु बली परस्तु विबलश्चेद् वीर्यवान्योगदः॥

(दशाफल श्लोक 29)

(1) शनि व शुक्र दोनों ही स्वोच्चगत, स्वगृही, वर्गोत्तमी, मित्रराशिगत, शुभ स्थानगत आदि प्रकार से समान रूप से योगकारक हों तो इनकी परस्पर दशान्तर्दशा में कुबेर के समान धनी राजा भी भिक्षुकवत् हो जाता है।

(2) यदि इनमें से एक बलवान् व दूसरा निर्बल हो तो परस्पर दशान्तर्दशा में योगफल देते हैं।

तौ द्वावप्यबलौ व्ययाष्टरिपुगौ तद्भावपौ वापि तत्,
तद्भावेशयुतौ तदा शुभकरौ सौख्यप्रदौ भोगदौ।
एकः सद्भवनाधिपस्तदपरश्चेद्दुष्टभावेश्वरस्तावप्यत्र
सुयोगदावतिखलौ तौ चेन्महासौख्यदौ॥

(वही, श्लोक 30)

(3) यदि ये दोनों निर्बल हों या दोनों 6, 8, 12 स्थानों में हों, या दोनों 6, 8, 12 भावों के अधिपति हों, या 6, 8, 12 भावेश से दोनों युक्त हों तो अपनी परस्पर दशान्तर्दशा में अवश्य ही शुभ फल, सुख, भोग व समृद्धि आदि देते हैं।

(4) यदि दोनों में से एक दुष्ट भावों 6, 8, 12 का स्वामी हो और दूसरा शुभ स्थानों का स्वामी हो।

(5) अथवा ये दोनों ही परम अशुभ हों तो अपनी परस्पर दशा-अन्तर्दशा में सुख, समृद्धि व राज्य प्राप्ति कराते हैं।

पाराशरी का जो सिद्धान्त इस कारिका में बताया गया है, वह सिद्धान्त मूल रूप से ठीक है, लेकिन 'उत्तरकालामृतकार' ने दोनों की परस्पर दशान्तर्दशा में फल का जो विशेष नियम प्रतिपादित किया है, वह पाठकों को अटपटा अवश्य लग सकता है, लेकिन हम इस सिद्धान्त का प्रबल समर्थन करते हैं। बीसियों कुण्डलियों में पाराशर सिद्धान्त की अपेक्षा उत्तरकालामृत की बात बिल्कुल गोली की तरह बैठती है, ऐसा हमारा निजी अनुभव है। पूर्वोद्धृत श्रीमती गांधी की कुण्डली में देखिए। 30 नवम्बर 1967 को शनि में शुक्र की अन्तर्दशा प्रारम्भ हुई और जनवरी 80 तक रही थी। यह बात सर्वविदित है कि इस अवधि में उन्हें राज्यभंग के साथ अपमान भी सहना पड़ा था।

आइए परखें। पाराशरी कहती है कि शनि में शुक्रान्तर होने पर शनि का फल मिलेगा।

इस कुण्डली में शनि मारकेश है तथा अष्टमेश होकर महापापी है। तब शनि का फल अर्थात् मृत्यु शुक्रान्तर में हो जानी चाहिए थी। हम पाराशरी का गौरव रखने के लिए कह सकते हैं कि अपमान व राज्य-भंग भी मरण तुल्य होता है। लेकिन इतना मानने पर भी उत्तरकालामृत की बात अपना वजन रखती है।

देखिए, शनि दुष्ट स्थान का स्वामी है, लेकिन सप्तम केन्द्रेश होकर शुभ है। शुक्र पापी होकर भी षष्ठस्थ होकर योगकारक है। यह बात पहले सिद्ध हो चुकी है। अतः शनि व शुक्र तुल्य रूप से शुभाशुभत्व रखते हैं। अतः इनकी दशा नाशक होनी चाहिए।

शनि केन्द्रगत है और शुक्र दुःस्थान में है, तथापि दोनों में समान योगकारकत्व व पापत्व है, अतः नाशक योग बनता है। वस्तु स्थिति भी ऐसी ही थी।

पीछे कारिका 33-34 की व्याख्या में उद्धृत मीन लग्न वाली कुण्डली के संदर्भ में देखिए। वहाँ मिश्रित फल हुआ। दुर्घटना रूप अनिष्ट फल को छोड़कर शेष सारे फल अच्छे ही रहे। कारण देखिए-शनि स्वक्षेत्री है व शुक्र मित्रक्षेत्री है। अतः दोनों की दशा अशुभ होनी चाहिए।

दोनों ही पाप स्थान में हैं। अतः एक अवगुण हुआ। साथ ही शनि पापस्थानेश भी है, अतः अवगुण में वृद्धि हुई। शुक्र भी अष्टमेश है, अतः दोनों समान अवगुणी **उत्तरकालामृत** के अनुसार योगकारक बने, लेकिन अन्य कारणों से दुर्घटनाकारक भी। विशेष विवरण **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य** में देखें।

इस कुण्डली में दोनों नियम ही समान रूप से घटित होते हैं। मीन धनु लग्न में उत्पन्न लोगों के लिए यह योगकारक समय होता है-

शनिर्दाये तु शुक्रस्तु शुक्रदाये शनिस्तथा।
मीने धुनषि जातस्य योगदो भवति ध्रुवम्।।

(भावार्थरत्नाकर, अ. 12 श्लोक 2)

अब हमारे **आयुर्निर्णय पृ. 465** पर ही उद्धृत अमिताभ बच्चन की कुण्डली को देखिए। वहाँ कुम्भ लग्न माना गया है। कुछ लोग मीन लग्न भी मानते हैं। लेकिन इस प्रसंग में हमारी बात दोनों ही लग्नों में समान रूप से घटित होती है।

इन्हें शनि की दशा 19 अक्टूबर 1971 को शुरू हुई। अगस्त 1978 से अक्टूबर 1981 तक इन्हें शुक्रान्तर चला। सभी जानते हैं कि इस समय इन्हें अपार समृद्धि, यश व मान-सम्मान मिला।

आइए, कारण की गवेषणा करें। कुम्भ लग्न में शनि केन्द्रस्थ है और शुक्र अष्टमस्थ है, अतः योगप्रद सिद्ध होता है। वैसे भी कुम्भ लग्न के लिए शुक्र विशेष योगप्रद होता है।

इनमें से एक नीच है तथा एक मित्रक्षेत्री है, अतः योगप्रद है। सामान्य नियमानुसार भी लग्नेश की दशा में केन्द्रत्रिकोणेश शुक्रान्तर्दशा परम शुभ होनी चाहिए थी।

अब मीन लग्न पर विचार कर लें। शनि दुष्ट स्थान तृतीय में है और केन्द्र में है। नीच व मित्र स्थान यहाँ भी है। अतः योगकारक सिद्ध होते हैं।

अतः हमारा निवेदन है कि पाराशर नियमों का विस्तार, शक्ति व सीमा का खुलासा जानने के लिए अन्य ग्रन्थ भी पढ़ना आवश्यक है।

विशिष्ट राजयोग :

लग्नकर्माधिनेतारावन्योन्याश्रयसंस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत्॥ 41॥
धर्मकर्माधिनेतारावन्योन्याश्रयसंस्थितो।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत्॥ 42॥

ये चार विशिष्ट राजयोग होते हैं–

(1) लग्नेश व दशमेश दशम में हों।

(2) लग्नेश व दशमेश लग्न में हों।

(3) नवमेश व दशमेश दशम में हों।

(4) नवमेश व दशमेश नवम में हों।

यहाँ पर ये चार परम विशिष्ट राजयोग बताए गए हैं। पाराशरी का मौलिक सिद्धान्त है कि केन्द्र व त्रिकोण के स्वामियों का संबंध योगकारक होता है। इस बात को पाराशरी में इतनी बार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से बताया जा चुका है कि मूल पाराशरीकार यहाँ पुस्तक के अन्त में भला पिष्टपेषण क्योंकर करते। इसी बात को दृष्टि में रखकर हमने अन्य टीकाकारों के मन्तव्यों की अवधारणा कर वेताल शास्त्री जी के मत का अनुमोदन किया है।

अन्य टीकाकार कहते हैं कि लग्नेश दशम में हो, दशमेश लग्न में हो, नवमेश दशम में हो, दशमेश नवम में हो, ये चार राजयोग यहाँ बताए गए हैं। हमारा कहना है कि ये योग भी महत्त्वपूर्ण हैं तथा अच्छा योग करते हैं, लेकिन इन सब का बोध हमें इन दो कारिकाओं के बिना भी हो जाता है, तब पाराशरी में जहाँ किसी एक शब्द को भी कम या अधिक करने से पूरी अवधारणा ही बदल जाती है, तब ग्रंथकार ने इन कारिकाओं को विशेष प्रयोजन से यहाँ लिखा है।

यदि कोई कहे कि लग्नेश दशम में हो और दशमेश लग्न में हो अर्थात् दशमेश व लग्नेश में भाव साहचर्य, भावेश साहचर्य, बलवान् केन्द्र व बलवान् क्षेत्र संबंध हो तो विशेष राजयोग बनेगा। यही स्थिति नवम व दशम के विषय में रहेगी।

तब हमारा निवेदन है कि ऐसी परिस्थिति का योग तो बहुत ही उत्तम बनता है, लेकिन तब इनकी संख्या चार न होकर दो ही रहती है। अर्थात् लग्नेश दशम में, दशमेश लग्न में। यह एक योग और नवमेश दशम में व दशमेश लग्न में यह दूसरा योग बना।

जब कि ये चार राजयोग हैं, ऐसा ज्योतिष जगत् में प्रसिद्ध है।

इसके विरुद्ध दूसरा हेतु यह है कि पाराशरी में चर्वित चर्वण अर्थात् पुनरावृत्ति नहीं है। अतः इन दोनों ही योगों का स्पष्ट बोध हमें पूर्वोक्त संबंध चतुष्टय व केन्द्र-त्रिकोण संबंध से ही हो जाता है, फिर पुनरावृत्ति क्यों?

अतः हमने आरम्भ से प्रोक्त चार योगों को ही यहाँ मुख्यार्थ माना है। अतः शेष राजयोग जो नवमेश दशमेश के सहित अन्य केन्द्रेशों व त्रिकोणेशों से बनते हैं वे पहले ही स्फुट हैं।

इन चारों राजयोगों में क्या विशेषता है इस विषय को समझना भी आवश्यक है। आइए देखें, किस कारण से इनकी इतनी प्रशंसा है। आप जानते हैं कि केन्द्रों में 4, 7, 10 क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक ताकतवर हैं। अतः दशम सर्वाधिक बली केन्द्र भाव है। त्रिकोणों में 5, 9 भाव उत्तरोत्तर बली हैं। अतः नवम बली त्रिकोण है।

इन सब में लग्न एक बिल्कुल अद्वितीय भाव है। उसे केन्द्रत्व भी प्राप्त है और त्रिकोणत्व भी।

मूल सिद्धान्त वही है कि केन्द्रेशों व त्रिकोणेशों का अथवा केन्द्रत्रिकोणों का साहचर्य, सम्बन्ध शुभ फल को उत्पन्न करता है।

सर्वोत्तम का सर्वोत्तम से संबंध सर्वोत्तम शुभ बनाएगा ही, यह बात तर्क सिद्ध है।

दशमेश व नवमेश दोनों ही नवम या दशम में हों तो प्रथम केन्द्र व त्रिकोण संबंध बना, उस पर एक ग्रह स्वक्षेत्री और भाव साहचर्य से युक्त होगा, उस पर दूसरा ग्रह भी भावेश साहचर्य से युक्त होगा। अतः दशमेश

व नवमेश दोनों साथ-साथ दशम व नवम में हों तो विशेष योग होंगे।

अब इसी प्रकार लग्नेश से बनने वाले योग की परीक्षा होगी। लग्न स्थान पूरी कुण्डली में अद्वितीय है। बताया जा चुका है कि लग्न में वह शक्ति है जो पापतम अष्टम भाव के कुप्रभाव को भी कम कर देती है। अत: लग्नेश व उत्तम केन्द्र दशमेश दोनों ही लग्न में हों या दोनों दशम में हों तो भी केन्द्र त्रिकोणेश सम्बन्ध बनकर भाव व भावेश साहचर्य नियम का प्रभाव मिलेगा।

पं. विनायक शास्त्री का मत है कि महर्षि पराशर के अन्य भावों का फल कहने की परिपाटी भी यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से बता दी है। लग्नेश चतुर्थेश की उक्त स्थिति हो तो सुख, सम्पत्ति, वाहन सुख मिलेगा।

लग्नेश सप्तमेश से यह योग बने तो अच्छी पत्नी व दाम्पत्य सुख और लग्नेश नवमेश से योग होने पर भाग्य वृद्धि आदि फल होंगे। अर्थात् जिस भाव का लग्न से उक्त प्रकार से सम्बन्ध बनेगा वही भाव उत्तम हो जाएगा।

इस विषय में वाहन, धन, भाग्य, दाम्पत्य, राजत्वादि योगों का विशेष परिज्ञान इसी पद्धति से 'भावार्थरत्नाकर' के सम्बन्धित प्रकरणों में कराया गया है। पाठकों को उक्त पुस्तक का अध्ययन अवश्यमेव करना चाहिए।

इस आधार पर वृषभ लग्न में नवमेश दशमेश शनि यदि नवम या दशम में हो और शुभग्रहों से योग करे तो भी एक श्रेष्ठ योग बनता है।

उक्त प्रकार के सभी योगों का फल विख्यात होना, विजयी होना, धन, मान-सम्मान व उपलब्धियों की पराकाष्ठा आदि होता है।

नवमेश व लग्नेश का उत्तम राजयोग पं. मोतीलाल नेहरू की कुण्डली में देखने को मिलता है-

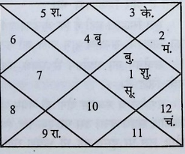

नवमेश गुरु लग्न में व लग्नेश चन्द्र नवम में है। फलस्वरूप अच्छा राजयोग बनता है। अच्छे वकील, अच्छे नेता, धनी-मानी राजाओं पर व ब्रिटिश शासकों पर भी अपना प्रभाव रखने वाले पं. नेहरू के राजयोग में कोई सन्देह नहीं है।

लग्नेश व दशमेश का एकत्र दशम या लग्न में होना और नवमेश दशमेश का एकत्रित नवम या दशम में होना तो वास्तव में और भी विशिष्ट राजयोग बनाएगा। यहाँ पाराशरी सिद्धान्तानुसार सम्बन्ध पर आधारित राजयोग ही बताए गए हैं। इनके अतिरिक्त आश्रय, संख्या, महापुरुष आदि शुभ योग तथा बहुत से श्रेष्ठ राजयोग भी होते हैं। बहुत से धनी-मानी, श्रेष्ठ शासक, राजा, राजतुल्य व्यक्ति इस संसार में हुए हैं, लेकिन उनकी कुण्डली में इन चार विशिष्ट राजयोगों में एक भी योग न था। अतः इनके न होने पर अन्य विशेष योगों के आधार पर भी व्यक्ति श्रेष्ठ भाग्यवान्, धन, विद्या, गुण व सुखों से युक्त हो सकता है। अतः विस्तृत अध्ययन के लिए पाठकों को बृहज्जातक, उत्तरकालामृत, जातक पारिजात, फलदीपिका आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।

इस अध्याय में अन्तर्दशाओं व महादशाओं का परस्पर समन्वय कर के फल कहने की पद्धतियां बताई गई हैं। वास्तव में यहाँ बताए गए सभी सिद्धान्त अकाट्य और अद्वितीय हैं। नव्य पाठकों के लिए प्रथमाध्याय में प्रसंगवश विंशोत्तरी दशा का साधन बताया था। अब अन्तर्दशा के विषय में कुछ पद्धतियां बताते हैं, जिससे आपको अन्तर्दशा के मान के ज्ञान में अवश्य सहायता मिलेगी। पहले बता चुके हैं कि जन्म नक्षत्र का अधिष्ठाता ग्रह ही आद्य दशेश होता है। अतः कृत्तिका से जन्म नक्षत्र तक गिनकर 9 से भाग देने पर दशेश प्राप्त हो जाता है।

दशा जानने के लिए अश्विनी से सीधे जन्म नक्षत्र तक गिनें और 2 घटाकर 9 का भाग दें। इस प्रकार भी क्रमशः जन्म दशेश प्राप्त हो जाता है। विंशोत्तरी साधन के लिए 27 नक्षत्र ही माने गए हैं। अतः अभिजित् को नहीं गिनना चाहिए।

अन्तर्दशा साधन के प्रकार–यहाँ अन्तर्दशा निकालने के कुछ प्रकार बता रहे हैं। इनमें से आप यथेच्छ कोई एक प्रकार अपना सकते हैं। यदि सारिणी उपलब्ध हो तो उसकी शुद्धता परखने के लिए भी आप इसका प्रयोग कर सकते हैं।

(1) विंशोत्तरी दशा में दशेश का क्रम व उनके दशा वर्ष इस प्रकार होते हैं –

सूर्य–6, चन्द्र–10, मंगल–7, राहु–18, गुरु–16, शनि–19, बुध–17, केतु–7, शुक्र–20।

जिस महादशा में अन्तर्दशा जाननी हो, उन दशेशों के वर्षों को गुणा कर 120 से भाग दें। भागफल से अन्तर्दशा का समय ज्ञात हो जाएगा।

उदाहरणार्थ सूर्य में सूर्य की अन्तर्दशा जाननी है। इसके दशा वर्ष 6 है।

अतः $\frac{\text{दशेश के वर्ष} \times \text{अन्तर्दशेश के वर्ष}}{120}$ के सूत्र से गणित किया

तो $\frac{6 \times 6}{120} = \frac{36}{120} = \frac{3}{10}$ वर्ष अर्थात् 3 मास 18 दिन।

सूर्य से चन्द्र की अन्तर्दशा जाननी हो तो $\frac{6 \times 10}{120} = \frac{60}{120} = \frac{1}{2}$ वर्ष या 6 मास।

इसी प्रकार किसी भी अन्तर्दशा का मान जाना जा सकता है।

(2) दोनों ग्रहों की दशा वर्षों को परस्पर गुणाकर उसे 3 से गुणा करने पर अन्तर्दशा के दिन आ जाते हैं। इन दिनों से मास, वर्ष बना लेते हैं। यह पद्धति अपेक्षाकृत सरल है।

उदाहरणार्थ सूर्य में मंगल की अन्तर्दशा जाननी है तो $6 \times 7 \times 3 = 126$ दिन, अर्थात् 4 मास 6 दिन।

सूर्य में चन्द्र :

$6 \times 10 \times 3 = 180$ दिन, अर्थात् 6 मास।

(3) दोनों दशेशों के दशा वर्षों को परस्पर गुणा कर लें। गुणनफल में इकाई के अंक को 3 से गुणा कर दिन व शेष दहाई आदि के अंक मास होते हैं। यह सबसे सरल पद्धति है।

सूर्य में सूर्य की अन्तर्दशा :

$6 \times 6 = 36$। इकाई के अंक 6 को 3 से गुणा किया तो 18 दिन व दहाई का अंक 3 मास हुए। अतः 3 मास 18 दिन की अन्तर्दशा हुई

शनि में चन्द्रमा :

$19 \times 10 = 190$ तो केवल 19 मास अर्थात् 1 वर्ष 7 मास की अन्तर्दशा रहेगी।

यदि प्रत्यन्तर निकालना हो तो एक बहुत सरल प्रकार बता रहे हैं–

$$\frac{\text{महादशा वर्ष} \times \text{अन्तर्दशेश वर्ष} \times \text{प्रत्यन्तर्दशेश वर्ष}}{40} = \text{प्रत्यन्तर्दशा दिन}$$

उदाहरणार्थ सूर्य की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा में चन्द्र की प्रत्यन्तर्दशा जाननी है तो $\frac{6 \times 7 \times 10}{40} = \frac{420}{40} = \frac{21}{2}$ दिन

अर्थात् 10 दिन 30 घड़ी।

दशान्तर्दशादि लिखने का प्रकार व अन्य उपयोगी जानकारी हमारी पुस्तक **'जन्मपत्री स्वयं बनाइए'** से प्राप्त की जा सकती है।

अब पाराशरी के अनुसार प्रत्येक लग्न के शुभाशुभ ग्रहों का निर्णय बताते हैं। इससे आपको अवश्य सुविधा रहेगी।

मेष लग्न : सूर्य, मंगल, गुरु शुभ हैं। शुक्र मारक और शनि पाप है। बुध स्वभाव व परसाहचर्यादि से शुभ हो सकता है। चन्द्र पाप है।

वृष लग्न : सूर्य मंगल व चन्द्र सम हैं। बुध, शुक्र शुभ हैं। शनि परम योगकारक व गुरु परम पापी है।

मिथुन लग्न : बुध, शुक्र शुभ हैं। चन्द्र सम है। सूर्य पाप है। मंगल पापी है। गुरु मारक है। शनि स्वभावत: पापी है; लेकिन भाव साहचर्यादि के आधार पर शुभ फल भी देता है।

कर्क लग्न :मंगल योगकारक, सूर्य बुध सम, चन्द्र शुभ, शनि मारक व शुक्र पापी है। गुरु मिश्रित है।

सिंह लग्न : मंगल योगकारक, सूर्य शुभ, चन्द्र सम, बुध शुक्र पापी, गुरु दोषयुक्त; किन्तु स्थितिवशात् शुभसन्धाता, शनि मारक है।

कन्या लग्न : सूर्य सम, चन्द्र मंगल पापी, बुध शुभ, शनि दोषयुक्त थोड़ा शुभ, गुरु मारक व शुक्र शुभ है।

तुला लग्न : सूर्य व गुरु पापी, चन्द्र सम, मंगल मारक, बुध शुभ, शुक्र शुभसन्धाता व शनि योगकारक है।

वृश्चिक लग्न : मंगल शुभ, बुध पापी, गुरु शुभ लेकिन मारक, शुक्र मारक, शनि पापी, सूर्य चन्द्रमा शुभ हैं।

धनु लग्न : बुध पापी, गुरु शुभाशुभ, सूर्य शुभ, चन्द्र व शनि पाप, मंगल शुभ, शुक्र सम, अर्थात् शुभाशुभ होता है।

मकर लग्न : सूर्य चन्द्रमा पापी, मंगल सामान्य शुभ, बुध अल्प शुभ; गुरु स्वाभाविक शुभाशुभ, शनि शुभ और शनि योगकारक होता है।

कुम्भ लग्न : शनि शुभ, शुक्र योगकारक, गुरु पाप, बुध अतिपाप, मंगल शुभाशुभ, चन्द्र अत्यन्त शुभ, सूर्य भी शुभ और दोनों योगकारक होते हैं।

मीन लग्न : गुरु शुभ, शुक्र अति पाप, शनि व सूर्य पापी, चन्द्र शुभ, मंगल शुभ, बुध मारक होता है।

शुभग्रहों की शुभता व अशुभ ग्रहों की अशुभता किन परिस्थितियों में घट-बढ़ जाती है, इसका विवेचन पीछे किया जा चुका है। यहाँ पर सामान्यत: शुभाशुभ ग्रहों का विवेचन बताया गया है।

खगनभग्रह सैक शके (1909) मधौ,
दिनकरस्य झषक्रमणे विधौ।
अमितभावभृतां प्रमितां हितां,
ललितयाहितयाहि गिराऽगृणात्॥ 1॥
लघु पाराशरीं चैनां ग्रन्थिनिर्मोकमण्डिताम्।
मिश्रःसुरेशचन्द्रोऽयं शंकरकृपयाऽगदत्॥ 2॥
अयि ! विद्याधरमिश्रो दैवज्ञेज्यश्चिरञ्जयतु।
किञ्च तदीय प्रपौत्र भणिती राकेव मनांसि रञ्जयतु॥ 3॥

॥ इत्युडुदायप्रदीपे लघुपाराशर्यां पं. सुरेशमिश्रकृतायां विद्याधरी-
हिन्दीव्याख्यायां दशाफलाध्यायः पंचमः॥
समाप्तेयं लघुपाराशरी
॥ शम्॥

पारिभाषिक शब्दावली

अन्योन्याश्रय	एक–दूसरे की राशि में होना। यथा मेष में सूर्य व सिंह में मंगल। इसे क्षेत्र सम्बन्ध या स्थान सम्बन्ध भी कहते हैं।
अयुक्	साथ न होना या सम्बन्धी न होना।
इतर	दूसरा। केन्द्र व त्रिकोणों के अतिरिक्त दूसरा।
उडुदाय	उडु अर्थात् नक्षत्र पर आधारित दाय–दशा।
कारकग्रह	शुभ फल देने वाले ग्रह।
केन्द्र	कुण्डली में 1, 4, 7, 10 स्थान।
जीव	बृहस्पति का नाम।
तमोग्रह	भौतिक पिण्ड रहित ग्रह : राहु व केतु।
त्रिकोण	कुण्डली में 1, 5, 9 स्थान।
त्रिषडाय	कुण्डली में 3, 6, 11 स्थान।
दोष	3, 6, 11 स्थानों का स्वामी होना अथवा शुभग्रह बृहस्पति, शुक्र, पापसंगरहित बुध व वर्धमान चन्द्रमा की राशि केन्द्र में पड़ना (केन्द्राधिपत्य दोष)।
परसाहचर्य	साथ स्थित दूसरे ग्रह का प्रभाव ले लेना।
पापी	स्वाभाविक पापग्रह शनि, मंगल, राहु, सूर्य। पाप स्थानों के स्वामी ग्रह। अष्टमेश सर्वाधिक पापी।
पापकृत	पापफलदायक, स्थिति चेष्टा आदि से पापी।

पाप	स्वाभाविक पापी या दोषयुक्त, जैसे निचास्तंगतशत्रुक्षेत्रादि में होना।
प्रसक्त	सम्बन्ध रखना। अप्रसक्त–सम्बन्ध न रखना।
फलानुगुण्य	शुभ–पाप मिश्रित। दो विरोधी फलों का समन्वय करना। शुभ व पाप फलदायक ग्रहों के फल का इकट्ठा भोग।
भावसाहचर्य	किसी भाव में बैठकर, उसी भाव के शुभाशुभ प्रभाव को ले लेना।
भावेशसाहचर्य	साथ में स्थित ग्रह की अपनी राशियां जिन भावों में हों, उन भावों के शुभाशुभ प्रभाव को ले लेना।
भुक्ति	अन्तर्दशा। महादशा में आने वाली भीतरी दशा। महादशा का स्वामी ग्रह महादशेश। अन्तर्दशा का स्वामी ग्रह अन्तर्दशेश।
मारक स्थान	लग्न से 2, 7 भाव। सप्तम भाव बली मारक।
मारकेश	लग्न से द्वितीय व सप्तम स्थानों के स्वामी।
मारक ग्रह	मृत्यु देने वाला ग्रह। देखें, मारकाध्याय।
योग	शुभ फल देने वाली ग्रह–स्थितियां।
योगफल	अत्यन्त शुभ फल। योगज–योग से उत्पन्न शुभ फल।
योगकारक	अत्यन्त शुभ फल देने वाला ग्रह। केन्द्रेशों व त्रिकोणेशों का परस्पर सम्बन्ध योगकारक होता है।
रन्ध्र	लग्न से अष्टम स्थान।
राजयोग	मान, सम्मान, धन, पदवी, यश देने वाली ग्रह स्थितियां। योगों में राजा अर्थात् श्रेष्ठ योग।
व्यत्यय	परस्पर विपरीतता। उल्टा–पुल्टा। यथा–नवम का स्वामी दशम में व दशम का स्वामी नवम में हो। क्षेत्र सम्बन्ध का पर्यायवाचक।

साधर्म्य	समानता। समान शील स्वभाव होना। शुभ ग्रहों में परस्पर साधर्म्य होता है। इसी प्रकार एक पापी ग्रह दूसरे पापी का सधर्मी होता है।
सम	न शुभ, न अशुभ। द्वितीय व द्वादश स्थान सम स्थान और इनके स्वामी समग्रह।
सम्बन्ध	बन्ध या सम्बन्ध। ग्रहों का परस्पर चतुर्विध सम्बन्ध। क्षेत्र सम्बन्ध, पूर्ण दृष्टि सम्बन्ध, स्थान-स्थित-दृष्टि सम्बन्ध व सहस्थिति। मतान्तर से परस्पर केन्द्र त्रिकोण में होना भी सम्बन्ध। देखें कारिका 14 की व्याख्या।
संयुत	एक साथ होना। कहीं-कहीं पर चारों सम्बन्धों का वाचक। पर्यायवाचक संयुक् संयुक्त, सहावस्थित।
सहावस्थान	साथ-साथ एक ही स्थान में होना। चार सम्बन्धों में सबसे निर्बल एक सम्बन्ध।
सुन्दोपसुन्द न्याय	जितने योग शुभ उतने ही अशुभ होने से फल का शून्य हो जाना।

✪✪✪

आचार्य वराहमिहिर का ज्योतिष में योगदान

शोधकर्ता : डॉ. भोजराज द्विवेदी ज्योतिषाचार्य, एम.ए.पी.एच.डी.

भारतीय ज्योतिष के पितामह कहे जाने वाले **आचार्य वराहमिहिर** के व्यक्तित्व और कृतित्व पर हिन्दी में यह सर्वप्रथम शोध प्रबन्ध है। आचार्य वराह मिहिर का कृतित्व सागर के समान गहन और विस्तृत है। इस पर शोध कार्य प्रस्तुत करने वाला यह ग्रन्थ अनमोल मोती के समान है। इस प्रकार देखा जाय तो डॉ. भोजराज द्विवेदी ने मोती में सागर भरने का काम किया है।

डॉ. द्विवेदी ने इस शोध ग्रन्थ में आचार्य **वराह मिहिर** की ज्योतिष रचनाओं का गहन अध्ययन प्रस्तुत करने के साथ-साथ यह ऐतिहासिक तथ्य भी उजागर किया है कि दिल्ली के पास महरौली ही वास्तव में आचार्य वराह की निवास भूमि मिहिरावली और तथाकथित कुतुब मीनार उनकी वेधशाला थी। इस तथ्य को डॉ. द्विवेदी ने पुष्ट प्रमाणों और चित्रों द्वारा सिद्ध किया है।

इस ग्रन्थ रत्न में आप पायेंगे **आचार्य वराहमिहिर** का वंश परिचय, जीवन तथा रचनाओं का परिचय, उनके आराध्यदेव सूर्य की कृपा, महाराज विक्रमादित्य के दरबार में स्थान पाना, यूनान-यात्रा और खन्ना से विवाह तथा बहुत-सी सटीक भविष्य वाणियों का वर्णन। यही नहीं, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों काम में आने वाली उपयोगी जानकारियाँ बृहत् संहिता में **आचार्य वराहमिहिर** ने दी हैं। **उदाहरणार्थ वास्तु विज्ञान, वृक्षारोपण, भूमि में जल कहां मिलेगा? प्रतिमा-निर्माण, वज्रलेप जो करोड़ साल तक भी खराब नहीं होता। (यही कुतुब मीनार के पास लौह-स्तम्भ का रहस्य है)। पुरुष लक्षण, स्त्री लक्षण, गौ, कुक्कुर, हस्ती, छाग, अश्व आदि के लक्षण, रत्न परीक्षा, स्त्री की महत्ता, कान्दर्पिका, विवाह, शकुन, अंगविद्या आदि विषयों** को डॉ. द्विवेदी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में समाहित किया है। हमें पूर्ण आशा है कि इन विषयों के अध्ययन से प्रत्येक व्यक्ति लाभान्वित होगा, चाहे वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में काम करता हो।

मूल्य : 250 रुपये

श्रीनिवास महादेवपाठकविरचितं

दशाफलदर्पणम्

जातकतत्व, पत्रीमार्गप्रदीप आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों के रचयिता श्री महादेव पाठक जी के सुपुत्र श्रीनिवास पाठक कृत यह ग्रन्थ लगभग 100 वर्ष पहले संस्कृत में लिखा गया था।

अब सर्वप्रथम हिन्दी व्याख्या सहित –

● दशा साधन की सरल विधियां। सोदाहरण विवेचन ● जैमिनी दशाओं का स्पष्ट विवेचन ● भाव स्थिति, राशि व सबल ग्रह के अनुसार दशाफल में तारतम्य ● महादशेश व अन्तर्दशेश के परस्पर सम्बन्ध से दशाफल ● गोचर व षड्वर्ग के साथ दशाफलादेश ● अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, प्राण व सूक्ष्मदशाओं का विस्तृत फल ● हिन्दी व्याख्या में रवानगी, सरलता, उदाहरणों द्वारा विषय को बिल्कुल स्पष्ट किया गया है ● प्राचीन ग्रन्थों के सन्दर्भों सहित प्रसिद्ध मान्य ग्रन्थ ● विंशोत्तरी फल : अनुभव में खरा ● दुर्लभ संग्रहणीय ग्रन्थ आपके हाथों में।

सम्पादनव्याख्यादिकृत : डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र ज्योतिषाचार्य

मूल संस्कृत श्लोक व सरल हिन्दी व्याख्या *200 रुपये*

सकलागमाचार्य श्री नृसिंह दैवज्ञ विरचित

जातक सारदीप

त्रिस्कन्ध ज्योतिष के विशेषज्ञ श्री नृसिंह दैवज्ञ रचित यह ग्रन्थ पन्द्रहवीं सदी में दक्षिण भारत में लिखा गया था। मूल संस्कृत श्लोक सहित पहली बार हिन्दी भाषा में इसका व्याख्यात्मक संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है।

55 अध्यायों में सम्पूर्ण होराशास्त्र की क्रमबद्ध प्रस्तुति अनूठी है। छूटे हुए पाठ को पूरा करके पुनः सम्पादनपूर्वक प्रस्तुत यह कृति ज्योतिष शास्त्र की अमूल्य धरोहर है।

एक झांकी

(1) जन्मफल के अनूठे प्रकार, (2) दक्षिण भारतीय व यवन मत का समन्वय, (3) विस्तृत दशाफल एवं पंचांग फल, (4) राजयोग व राजयोग भंग, (5) ताजिक शास्त्र के अनूठे योगों का जातक में प्रयोग, (6) स्वर शास्त्र से जन्मफल करने का अनोखा प्रकार, (7) नष्टजातक, आयुर्दाय–वर्गफल, ग्रहों का दृष्टिफल आदि, (8) अन्य भी बहुत कुछ उपयोगी व प्रामाणिक।

विस्तृत व्याख्या : मनोरम प्रस्तुति : संग्रहणीय

सम्पादक व व्याख्याकार : डॉ० सुरेश चन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य

विशिष्ट संस्करण 600/– दो भाग *मूल्य : 400 रुपये*

कल्याणवर्मा द्वारा रचित

सारावली

सारावली वास्तव में ज्योतिष प्रेमियों के गले में सुशोभित होने वाली हारावली ही है। 55 अध्यायों में लगभग 2500 श्लोकों द्वारा ज्योतिषशास्त्र की जातक शाखा का समस्त सार नवनीत लेकर ग्रन्थकार ने इसकी रचना की थी। सातवीं सदी ईसा की यह रचना ज्योतिष शास्त्र की प्रथम श्रेणी की पाठ्य पुस्तकों में से एक है। प्रत्येक ज्योतिष प्रेमी के लिए अनिवार्य रूप से पठनीय इस पुस्तक में ग्रहों की दृष्टि का फल व नष्टजातक का सटीक विचार तो अनूठा है ही, साथ में राजयोगों का विस्तृत व प्रामाणिक विवेचन भी यहाँ मिलेगा। गर्ग, पराशर, यवनेश्वर, कनकाचार्य, चूड़ामणि आदि के ग्रन्थों का सार ग्रन्थकार ने बड़ी कुशलता से इसमें गूंथ दिया है।

बृहत् पाराशर व बृहज्जातक के अध्ययन के उपरान्त इसको पढ़े बिना ज्योतिष स्वाध्याय आधा अधूरा सा ही रह जाता है। आधान से निर्याण तक, निध् र्न योगों से धनाढ्य योगों तक, सेवक-योगों से राजयोगों तक का अनूठा विचार राजा कल्याण वर्मा ने बड़ी सुन्दरता से किया है। ज्योतिष शास्त्र की इस अनूठी रचना को पढ़े बिना आप रह नहीं सकेंगे।

अनूठा, सम्पूर्ण ग्रन्थ,
मिश्राजी की विद्वत्तापूर्ण लेखनी से

व्याख्या : डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य

विशेष संस्करण *: 300 रुपये* *मूल्य : 200 रुपये*

आचार्य मंत्रेश्वर कृत

फलदीपिका

'फलदीपिका' ग्रंन्थ की रचना मंत्रेश्वर ने दक्षिण भारत में आज से प्रायः 400 वर्ष पहले की थी। फलित ज्योतिष पर आधारित हिन्दी भाषा में व्याख्या सहित मूल श्लोक प्रकाशित हुए हैं। बृहत्पाराशर, बृहज्जातक, जातक पारिजात, सारावली आदि की भांति फलित ज्योतिष का यह अनुपम ग्रंथ है। फलित ज्योतिष के बहुत से ऐसे नवीन सिद्धान्त इसमें दिये गए हैं जो कि उत्तर भारत में अब तक संस्कृत ग्रंथों में भी उपलब्ध नहीं थे।

सर्वप्रथम सम्पूर्ण, शुद्ध एवं प्रामाणिक हिन्दी व्याख्या

व्याख्याकार : डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र

विशेष संस्करण 200 रुपये *मूल्य : 150 रुपये*

वैदिक नक्षत्र ज्योतिष

लेखक–डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य एम.ए.पीएच.डी.

भारतीय वैदिक ज्योतिष का मूल आधार नक्षत्र ही है, यह बात सर्वसम्मत है। नक्षत्र ज्योतिष की वैदिक काल से आज तक की यात्रा के विभिन्न पड़ावों का विहंगावलोकन करते हुए, व्यावहारिक ढंग से नक्षत्र पर आधारित फलादेश की अचूक विधियाँ इस ग्रन्थ में बताई गई हैं। इसमें आप पाएंगे–

♦ नक्षत्र द्वारा प्रत्येक भाव का सटीक विचार। ♦ नक्षत्रों द्वारा व्यक्तिगत जातक फल। ♦ नक्षत्र: जन्म समय का सही निर्णय ♦ नक्षत्र: वैदिक कथानक: ऐतिहासिक ♦ नक्षत्र व चरणों का विस्तृत फल ♦ नक्षत्र द्वारा व्यवसाय का चुनाव ♦ नक्षत्र द्वारा भाग्य निर्णय ♦ नक्षत्र: राजयोग व शुभाशुभ ♦ नक्षत्र गोचर से ग्रह फल ♦ नक्षत्रों द्वारा शरीर लक्षण ♦ अरिष्ट शान्ति: अनिष्ट निवारण ♦ नक्षत्र संहिता: राष्ट्रीय शुभाशुभ ♦ वर्षा: सत्तारोहण: वार्षिकफल ♦ नक्षत्र: वास्तु का तार्किक विवेचन ♦ नक्षत्रों द्वारा तेजी मन्दी: मूल सूत्र ♦ नक्षत्र मुहूर्त: नाड़ी मुहूर्त ♦ आकाशदर्शन: यूनानी कथाएँ ♦ शास्त्रीय व प्रामाणिक प्रस्तुति ♦ कपोल कल्पनाओं से परे: वैदिक आधार।

सब कुछ शास्त्रीय, प्रमाण सहित, कपोल कल्पना से परे, व्यावहारिक जिसे आप स्वयं प्रयोग में ला सकें।

ग्रन्थ इस कोटि का कि आप मुग्ध हों ***मूल्य 200 रुपये***

जातक सत्याचार्य

डॉ. गौरीशंकर कपूर

आचार्य सत्याचार्य एक बौद्ध सन्यासी थे व ज्योतिष विद्या के पारंगत विद्वान थे। यह इसी बात से सिद्ध होता है कि वराहमिहिर जैसे विद्वान् ने उनके मत को अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ **'बृहज्जातक'** में प्रमुखता से आत्मसात किया। प्रस्तुत ग्रन्थ **"जातक सत्याचार्य"** उन सिद्धान्तों को लघु रूप में प्रस्तुत करता है जो **'ध्रुव नाड़ी'** व **'सत्य संहिता'** नाड़ी के आधार हैं।

प्रस्तुत **"जातक सत्याचार्य"** ग्रन्थ के सिद्धान्त अद्भुत हैं वे फलित की कसौटी पर खरे उतरते हैं। इसमें फलित के लिए पांच सिद्धांत बताये गये हैं। नक्षत्र सिद्धान्त, भाव फल, ग्रह कारकत्व, दशाफल व नवांश फल इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषताएं हैं जो कि अन्य मान्य ज्योतिष ग्रन्थों में अप्राप्य हैं। किसी भावाधिपति की अन्य भावों में स्थिति का फल विशेष है। जो भी सिद्धान्त बताये गये हैं, वे क्रम पूर्वक हैं, पाठक के लिए सरस हैं व सरल रूप से बुद्धि को उद्वेलित करते हैं।

ग्रन्थ ऐसा है जो पाठक में ज्योतिष के प्रति अटूट श्रद्धा व विश्वास भरता है व अन्य ज्योतिष सम्बन्धी भ्रान्तियों का भी निराकरण करता है।

रुपये 80

अंग विद्या पर अनूठी रचना

शरीर लक्षण एवं चेष्टाएँ

(Body Language)

शरीर लक्षण ज्योतिष शास्त्र का एक प्रमुख अंग है। वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य व ज्योतिष वाङ्मय में भाव शरीर लक्षणों के तथ्य बिखरे पड़े हैं। यह भारतीय व विशुद्ध ऋषि प्रदर्शित फलकथन पद्धति है। मानव शरीर पर विद्यमान लक्षण चिह्न, रेखाएँ, तिल, मस्सा, आदि के साथ-साथ विभिन्न अंगों की बनावट, रंगत, सौन्दर्य व लावण्य मानवीय भविष्य के बहुत से अनकहे पहलुओं को छूते हैं। जिस प्रकार जन्मकालीन ग्रहस्थिति से भविष्य निर्धारण होता है, उसी प्रकार लक्षण विज्ञान द्वारा भी भविष्य कथन प्रामाणिक, नितान्त भारतीय व ऋषिसम्मत है।

मानव शरीर एक प्रकार से स्वयं ब्रह्माजी द्वारा लिखी गई जन्मकुण्डली है, केवल उसे समझने की विधि का ज्ञान हो तो मनुष्य बिना ज्योतिषी की सहायता के भी खुद भविष्य पढ़ सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में आप पाएँगेः

(1) शरीर लक्षण व चेष्टाओं का प्रामाणिक विवेचन।

(2) शरीर के प्रमुख दस भागों का सरल व सारगर्भित विश्लेषण।

(3) शरीर लक्षणों से धर्म, स्वास्थ्य, वाहन, सम्पत्ति, अधिकार व राजयोगों का निश्चित निर्णय।

(4) शरीरांगों से मानव जीवन का त्रिकालीय विवेचन।

(5) शरीरांग लक्षणों से दशा अन्तर्दशा जानना व उनका फलादेश।

(6) शरीर लक्षणों से जन्मकुण्डली की सत्यता की परीक्षा।

(7) सब कुछ भारतीय, विदेशी मत की मिलावट से रहित। ऋषियों का अपूर्व वचनामृत। भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर।

लेखक : डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य
एम.ए., पी-एच डी.

विशेष संस्करण : 300 रु. *मूल्य 150 रुपये*

॥ सामुद्रविद् बदति यातमनागतं च॥
अंग विद्या पर प्रामाणिक एवं मौलिक ग्रंथ

ज्योतिष पितामह महर्षि पराशर प्रोक्तं

बृहत् पाराशर होराशास्त्रम्

व्याख्याकार : डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्रः, ज्योतिषाचार्य

ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तकों में महर्षि पराशर का सर्वोच्च स्थान है। पाराशर होराशास्त्र भारतीय ज्योतिष में सर्वोपरि माना जाता है। वास्तव में पाराशर सिद्धान्तों का विस्तार ही सम्पूर्ण ज्योतिष है। पाराशर नियमों के बिना ज्योतिष कल्पना मात्र भी सम्भव नहीं है। इन्ही सब पाराशर सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रस्तुत ग्रन्थ बृहत् पाराशर होरा शास्त्र है। इसे पढ़ने के बाद कुछ भी पढ़ना बाकी नहीं रहता। विभिन्न संस्करणों में परस्पर विरोधी बातों का समन्वय करते हुए दाक्षिणात्य व उत्तर भारतीय रूपों व मान्यताओं का समाहार करके विद्वान व्याख्याकार ने विस्तृत व्याख्या भी दी है। दक्षिण भारत की कई अप्रकाशित व प्रकाशित पुस्तकों से भी इस संस्करण में सहयोग लिया गया है। शताध्यायी होरा के रूप में प्रसिद्ध यह ग्रन्थ शास्त्र के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय की तरह अन्तिम निर्णय देता है। पराशर व उनका यह होरा शास्त्र फलित कथन के लिए पहली व अंतिम सीढ़ी है।

प्रत्येक गुत्थी को सुलझाते हुए यह समालोचनात्मक संस्करण वास्तविक व निःसंदिग्ध अर्थ से ओतप्रोत है। भारतीय ज्योतिष की आत्मा पाराशर होराशास्त्र में ही बसती है।

सुविस्तृत, कपोल कल्पना व मिलावट से रहित सर्वतोभावेन अर्थ बोधक व्याख्या से युक्त एक प्रामाणिक संस्करण, जो स्वंय एक पुस्तकीय पुस्तकालय भी है।

101 अध्याय 944 पृष्ठ 4464 मूल श्लोक

दो भागों में सम्पूर्ण ग्रन्थ

मूल्य 400 रुपये

रंजन पब्लिकेशन्स

16 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

email:ranjanpublications@rediffmail.com